गुलामी

महात्मा जोतीराव फुले

प्रा. वेदकुमार वेदालंकार

- ☐ **आयु :** 62 वर्ष.
- ☐ **पता :** विद्यानगर, उस्मानाबाद (413 501) (महाराष्ट्र).
- ☐ **शिक्षा :** " वेदालंकार " उपाधि गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार से. 14 वर्षों तक वेद, संस्कृत, भारतीय दर्शनादि विषयों का वहाँ विशेष अध्ययन.

  एम. ए. (हिन्दी) आगरा विश्वविद्यालय से 1956 में. एम. ए. (संस्कृत) उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद से 1958 में.
- ☐ **सेवा :** 1956 से 1992 तक विभिन्न महाविद्यालयों में हिन्दी का अध्यापन-कार्य. इन 36 वर्षों में से 14 वर्षों तक उस्मानाबाद, तुलजापुर, तासगाव (जिल्हा सांगली) के विभिन्न महाविद्यालयों में प्राचार्य रहे. 1967-68 में डॉ. बाबासाहब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय की आर्ट फॅकल्टी के डीन रहे.
- ☐ **साहित्यिक सेवा :** मराठी की निम्नलिखित कृतियों का हिन्दी में अनुवाद किया :-

  (1) " छावा " (ले. शिवाजी सावंत) उपन्यास का अनुवाद भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 1993 में चौथा संस्करण निकला.

  (2) " पाचोळा " (तिनका) उपन्यास (ले. प्राचार्य रा. रं. बोराडे) अजमेर से 1987 में प्रकाशित.

  (3) " श्रीमान् योगी " (ले. रणजित देसाई) उपन्यास प्रकाशनाधीन है.

  (4) " रमाबाई "(ले. ज्योत्स्ना देवधर) उपन्यास भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता द्वारा प्रकाशनार्थ स्वीकृत.

  (5) महात्मा जोतीराव फुले के समस्त साहित्य का हिन्दी में अनुवाद. महात्मा जोतीराव फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति द्वारा प्रकाशित हो रहा है.
- ☐ समाचार-पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं में (मराठी एवं हिन्दी) कविता, लेखादि प्रकाशित होते रहते हैं.
- ☐ आकाशवाणी के औरंगाबाद केन्द्र से हिन्दी एवं मराठी में अनेक वार्ताएँ प्रसारित.
- ☐ डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद के हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित " अनुवाद संगोष्ठी एवं कार्यशाला " में विशेषज्ञ के रूप में निमंत्रित.
- ☐ वर्तमान में राजर्षि शाहू महाराज के मराठी-अंगरेजी भाषणों के हिन्दी अनुवाद-कार्य में व्यस्त.

महात्मा जोतीराव फुले समस्त साहित्य–1

गुलामी

मूल मराठी लेखक : **महात्मा जोतीराव फुले**

हिन्दी अनुवाद : **प्रा. वेदकुमार वेदालंकार**

निर्माण प्रबंध – **हरि नरके**

महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिती,
महाराष्ट्र शासन,
द्वारा–उच्च व तंत्रशिक्षा विभाग, मंत्रालय,
मुंबई 400 032

प्रथम संस्करण— 28 नवम्बर 1994

' Mahatma Jotirao Phule Samasta Sahitya-1—Gulami '
Original Marathi book written by Mahatma Jotirao Phule
translated into Hindi by Prof. Vedkumar Vedalankar
published by Mahatma Phule Charitra Sadhane Prakashan Samitee,
Government of Maharashtra, Barrack No. 18, Opp. Mantralaya,
Bombay 400 021

प्रकाशक
महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिती,
बरैक नं. 18, मंत्रालय के सामने, मुंबई 400 021
द्वारा—उच्च व तंत्र शिक्षा विभाग,
महाराष्ट्र शासन, मंत्रालय, मुंबई 400 032

मुखपृष्ठ
गजानन शेपाळ

मुद्रक
व्यवस्थापक,
शासकीय मध्यवर्ती मुद्रणालय,
नेताजी सुभाष रोड,
मुंबई 400 004

मूल्य रु. : 35 /-

महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिती
महाराष्ट्र शासन

ना. डॉ. पतंगराव कदम मंत्री, उच्च व तंत्रशिक्षा	अध्यक्ष
ना. विलास विश्वनाथ शृंगार पवार राज्यमंत्री, शिक्षा	उपाध्यक्ष
डॉ. जनार्दन वाघमारे	कार्याध्यक्ष
श्री हरि नरके	सदस्य और समन्वयकर्ता
श्री नवजीवन लखनपाल सचिव, उच्च व तंत्रशिक्षा	सदस्य
श्री के. पी. सोनावणे संचालक, उच्च शिक्षा	सदस्य-सचिव
डॉ. य. दि. फड़के	सदस्य
डॉ. बाबा आढ़ाव	सदस्य
प्रा. एन. डी. पाटील	सदस्य
श्रीमती कमल विचारे	सदस्य
डॉ. मा. गो. माळी	सदस्य
बै. पी. जी. पाटील	सदस्य
प्रा. ग. प्र. प्रधान	सदस्य
डॉ. रावसाहेब कसबे	सदस्य
श्री रमेश शिंदे	सदस्य

महात्मा फुले का वास्तविक छायाचित्र

सामाजिक क्रांति के अग्रदूत : महात्मा फुले

उन इने-गिने व्यक्तियों में महात्मा फुले को सम्मिलित करना होगा, जिन्होंने महाराष्ट्र के इतिहास पर अपनी छाप छोड़ी है. उन्नीसवीं सदी में समाज-जीवन से संबंधित शायद ही कोई ऐसी समस्या रही होगी जिस के समाधान के लिए महात्मा जोतीराव फुले ने अपना योगदान न दिया हो. नारी-शिक्षा, अतिशूद्रों की शिक्षा, ब्राह्मण विधवाओं के मुंडन को रोकने के लिए नाइयों का संगठन, धोखा खाई हुई विधवाओं की गुप्त तथा सुरक्षित प्रसूति, उनके अवैध माने जानेवाली बच्चों के लालन-पालन का प्रबंध, विधवाओं का पुनर्विवाह, सती तथा देवदासी प्रथा का विरोध आदि कार्यों के साथ-साथ उन्होंने किसानों, मिल-मजदूरों, कृषि-श्रमिकों आदि के कल्याण का कार्य भी किया. इन सभी कार्यों से बढ़कर कार्य है उनका शुद्रों तथा अतिशूद्रों को वरिष्ठ वर्ग की गुलामी से छुटकारा दिलाने और एक शोषणमुक्त समाज का गठन करने का कड़ा प्रयास.

महात्मा फुले ने ज्ञान और विज्ञान के माध्यम से ही इतिहास का अर्थ विशद किया और जनमानस में प्राचीन इतिहास के प्रति संदेह उत्पन्न किया. आधुनिक भारत के इतिहास में पहली ही बार ऐसा हुआ. जोतीराव द्वारा लिखी इस " गुलामी " से नये इतिहास का शोध कार्य प्रारंभ हुआ. इस ग्रन्थ ने " सत्यशोधक-समाज " को जन्म दिया. सत्यशोधक समाज ने बहुजन समाज में आत्मसम्मान और नया विश्वास जगाया.

जोतीराव की धारणा थी कि सभी प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है और सभी मनुष्यों में नारी श्रेष्ठ है. वे मानते थे कि स्त्री और पुरुष जन्म से ही स्वतंत्र है, इसलिए दोनों को सभी अधिकार समान रुप से भोगने का अवसर मिलना चाहिए. महाराष्ट्र शासन ने हाल ही में महिला कल्याण कि दिशा में " नयी नीति " अपनाई है. सभी स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं में तीस फीसदी आरक्षण महिलाओं के लिए रखा गया है. इस बाह्य क्रान्ति के साथ-साथ महिलाओं की ओर देखने का नजरिया भी बदलने की आवश्यकता है. जोतीराव के क्रांतिकारी विचारों से इस कार्य में गती मिलेगी.

मुझे विश्वास है कि महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिती द्वारा हिन्दी में अनुदित महात्मा जोतीराव फुले समस्त साहित्य खंड-1, " गुलामी " से समाज में नयी चेतना जगेगी और नवनिर्माण के विचारों को शक्ती मिलेगी.

(शरद पवार)
मुख्यमंत्री,
महाराष्ट्र राज्य.

गुलामी : सामाजिक क्रांति का घोषणापत्र

आधुनिक महाराष्ट्र में महात्मा फुले का कार्य एकमात्र और अद्वितीय स्वरूप का है. उन्होंने मानो अपने समानता पर आधारित महाराष्ट्र के ध्येय-सपनों की नींव ही डाली है. अपने ग्रंथों में उन्होंने हिंदू धर्म में विद्यमान विषमता पर कठोर प्रहार किये और समानता पर आधारित सत्यधर्म का समर्थन किया है.

उनके स्मृतिशताब्दी वर्ष में उनकी प्रेरणादायी जीवनी, तथा साहित्य प्रकाशित करने हेतु महाराष्ट्र शासन ने " महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति " गठित की है. समिति द्वारा महात्माजी का समग्र साहित्य राष्ट्रभाषा हिंदी और अंग्रेजी में प्रकाशित किया जा रहा है.
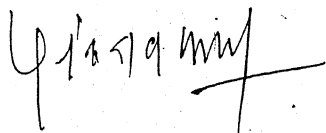
(1) महात्मा फुले : गौरव ग्रंथ खंड-1, (मराठी), संपादक : हरि नरके, डॉ. य. दि. फडके.
(2) युगपुरूष महात्मा फुले (हिन्दी)—लेखक : मुरलीधर जगताप.
(3) कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा फुले, व्हॉल्युम-1, स्लेवरी (अंग्रेजी अनुवाद–बॅ. पी. जी. पाटील).
(4) कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा फुले, व्हॉल्युम-2 सिलेक्शन्स (अंग्रेजी अनुवाद–बॅ. पी. जी. पाटील).
(5) आम्ही पाहिलेले फुले (मराठी), संपादक : हरि नरके.
(6) महात्मा फुले : साहित्य और विचार (हिंदी), संपादक : हरि नरके.

के पश्चात् ' गुलामी ' का यह प्रकाशन हो रहा है.

जोतीराव का गद्य तत्कालीन गद्य साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है. उनके सभी ग्रन्थों का उद्देश्य एक ही है. प्रस्थापित अन्यायी, विषम समाज-व्यवस्था के कारणों का स्पष्टीकरण और उच्छेदन तथा मानवता-प्रधान नूतन समाज की रचना. ' गुलामगिरी ' (गुलामी) उनकी महत्त्वपूर्ण रचना है. इस पुस्तक को उन्होंने यूनाइटेड स्टेट के उन सदाचारी लोगों को समर्पित किया है, जिन्होंने नीग्रो गुलामों को दासता से मुक्त करने की उदारता दिखाई है.

इस ग्रन्थ में जोतीराव ने काल्पनिक धर्मग्रन्थों में व्यक्त हिंदू आचार-विचारों पर कड़ी टिप्पणी की है. आदिनारायण के सभी अवतारों की उन्होंने जमकर खिल्ली उड़ाई है.

पूरा ग्रन्थ प्रश्नोत्तर रूप में है. जोतीराव के शिष्य धोंडिबा प्रश्न पूछते है और जोतीराव उन प्रश्नों का तार्किक उत्तर देते है. हर तरह की अन्धश्रद्धा को तोड़नेवाला यह विवेचन पूर्णतः बुद्धिप्रामाण्यवादी है. इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक का हिंदी अनुवाद प्रा. वेदकुमार वेदालंकार ने किया है. ग्रन्थनिर्माण प्रबंध समिति के समन्वयकर्ता श्री हरि नरके ने किया है.

यह क्रांतिकारी पुस्तक पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है. आशा है, पाठक इसका यथोचित स्वागत करेंगे.

(डॉ. पतंगराव कदम)
मंत्री, उच्च व तंत्र शिक्षा,
महाराष्ट्र राज्य.

दो शब्द

महात्मा जोतिराव फुले उन्नीसवीं सदी के एक महान क्रांतिकारी पुरुष थे. उन्हें केवल समाज सुधारक कहना ग़लत होगा. वास्तव में वे सामाजिक क्रांति के जनक थे. उनका पूरा जीवन धर्मभेद, वर्णभेद, जातिभेद और लिंगभेद के खिलाफ़ एक महान विद्रोह था. उनके विचार क्रांतिकारक थे. उनकी हर साँस में विद्रोह की आँधी छुपी हुई थी. शब्दों के आडंबर को उनके जीवन में कोई स्थान नहीं था. वे सच्चे कर्मवीर थे. सत्य की खोज ही उनके जीवन का लक्ष्य था. उनके विचार और आचार में किसी भी प्रकार का अंतर नहीं था.

महात्मा फुले स्त्री-शूद्रों के, शोषितों-पीड़ितों के और सर्वहारा जनजातियों के मसीहा थे. उनका जन्म 1827 में एक साधारण माली परिवार में हुआ था. महाराष्ट्र में पेशवाई का अंत 1818 में हुआ. लेकिन उसके बाद भी समाज की बागडोर ब्राह्मणों के ही हाथों में थी. धर्म और संस्कृतिकी सत्ता भट्ट-ब्राह्मणों के हाथों में ही थी. शूद्र, अतिशूद्र और सभी निम्न और पिछड़ी जातियाँ अज्ञान, अंधविश्वास और ग़रीबी की दलदल में डूब चुकी थीं. वे एक प्रकार की गुलामी के शिकार थीं. स्त्रियों की भी वही हालत थी. इस प्रकार के वातावरण से जोतिराव का बचपन प्रभावित था.

इस सामाजिक गुलामीका कारण क्या था? इस प्रश्नने जोतिराव को बचपनसे ही बेचैन किया था. उसने उनके मस्तिष्क में एक प्रकार की उथलपुथल मचा दी थी. पिछड़े तबके में जन्म लेने के कारण इस प्रश्न की चुभन उनके-हृदय में बचपन से ही थी. इस सामाजिक गुलामी के अनेक कारण हो सकते हैं. किन्तु उसका मूल कारण विद्या का अभाव ही था. अविद्या ही कई सामाजिक रोगों का मुख्य कारण है. यह चीज़ जोतिराव के ध्यान में बचपन में ही आई थी.

अविद्या हर प्रकार के अनर्थ को जन्म देती है. शिक्षा का अभाव ही अंधविश्वास, कुरीतियाँ, गरीबी, विषमता आदि समस्याओं की जड़ में होता है. इस देश में शूद्रों, अतिशूद्रों और स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार क्यों नहीं दिया गया? ब्राह्मणों ने उन्हे वेदों को स्पर्श करने का और पढ़ने का अधिकार क्यों नहीं दिया? इस वंचितता का कारण क्या था? उन्हें अधिकार दिया गया सिर्फ़ उच्च्य वर्णों के लोगों की सेवा करने का. सिर्फ़ सेवा का दूसरा अर्थ गुलामी होता है. ब्राह्मणोंने अपने स्वार्थ को धर्मशास्त्रों में सनातन सिद्धान्तों का रुप दिया. पाप और पुण्य की कई कथाएँ उन्होंने

पुराणों में लिखीं, उन कथाओंने भट्ट-ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ बना दिया. उनको भूमंडल का स्वामी बना दिया. वास्तव में उसके पीछे एक बहुत बड़ा षड़यंत्र था. यह फुलेजी की धारणा थी. धर्मशास्त्रों के आधार पर ही पुरोहितोंने इस देश में एक तरह के सांस्कृतिक उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया. और यह उपनिवेशवाद कई शताब्दियों तक पनपता रहा. वर्णभेद या जातिभेद की नीति ही इस गुलामी की आधारशिला थी.

अविद्या के कारण ही शूद्रों, अतिशूद्रों और स्त्रियों ने धर्मशास्त्रों पर विश्वास रखा. उच्च्य-नीचता को अर्थात् विषमता को बढ़ावा देने वाला जातिभेद ही हिंदू समाज का मुख्य लक्षण रहा है. उच्च्य-नीचता ही हिंदू धर्म की पहचान बन गई थी. अस्पृश्यता भी उसी की उपज रही है. यदि शूद्रों और अतिशूद्रों को शिक्षा मिलती, तो ऐसा नहीं होता इसीलिये फुलेजीने कहा—

" विद्या बिना मति गयी । मति बिना नीति गयी ।।
नीति बिना गति गयी । गति बिना वित्त गया ।।
वित्त बिना शूद्र गये । इतने अनर्थ, एक अविद्याने किये ।। "

इतने सारे अनर्थों को समाप्त करने के लिये शिक्षा का कार्य आरंभ करना ज़रुरी था. 1848 में फुलेजीने पूना में एक स्कूल की स्थापना की. 1852 में अछूत लड़कियों के लिये उन्होंने दूसरा स्कूल आरंभ किया. महाराष्ट्र में ही नहीं, अपितु पूरे देश में यह अपने ढंग का प्रथम प्रयास था. बम्बई प्रांत में स्कॉटिश मिशन के कुछ स्कूल थे. लेकिन किसी भारतीय व्यक्ति द्वारा किया गया यह प्रथम ही प्रयास था. पूना के ब्राह्मणों ने फुले को धर्मद्रोही और समाजद्रोही ठहराया. उनके दबाव के कारण जोतिराव को अपनी पत्नी के साथ घर छोड़कर जाना पड़ा.

महात्मा फुले सही अर्थों में एक युगपुरुष थे. क्रिश्चन मिशनरियों के मानवतावादी कार्यसे वे प्रभावित थे. टॉमस पेन के विचारों का बहुत गहरा प्रभाव उनके मनपर हुआ था. टॉमस पेन की 'राइटस् ऑफ मॅन' यह पुस्तक सामान्य लोगोंकी 'बाईबल' मानी जाती थी. जोतिराव फुले ने इस पुस्तक से प्रेरणाएँ प्राप्त की थीं. अपने अधिकारों का ज्ञान मनुष्य की शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है. स्त्री-शूद्रों को अपने अधिकारों का ज्ञान प्राप्त कराने के लिये ही फुलेजी ने शिक्षा प्रसार को महत्त्व दिया. वास्तव में यह कार्य अपने आप में परंपरागत हिंदू धर्मशास्त्रों को दी गई एक चुनौती थी. इस कार्यमें उनको सखाराम यशवंत परांजपे, सदाशिव गोवंडे आदि मित्रों की मदद मिली. स्वयं जोतिराव फुलेजीने स्कूल में पढ़ाने का पवित्र काम किया. उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री को पढ़ाया और बादमें पढ़ाने का काम उनपर सौंपा. सावित्री देवी प्रथम भारतीय शिक्षिका थीं, यह भारतीय महिलाओं के लिये गौरव का विषय है.

शिक्षा के साथ साथ महात्मा फुले का ध्यान दूसरी कई सामाजिक समस्याओं की ओर गया. महाराष्ट्र में कई स्थानों पर अकाल ने उग्र रूप धारण किया था.

अकालपीडित लोगों की मदद करने का काम उन्होंने किया. किसान वर्ग साहूकारों के शोषण का शिकार था. साहूकारी करने वाले भी श्रेष्ठ जाति के लोग थे. धर्मव्यवस्था की बागडोर जिनके हाथों में थी उनके ही हाथों में शिक्षाव्यवस्था, न्यायव्यवस्था और अर्थव्यवस्था की भी सत्ता थी. अंग्रेजों का भारत में आना शूद्र-अतिशूद्रों और स्त्री-जाति के लिये वरदान था. उनके साथ भारत में नये दौर का भी आगमन हुआ. किंतु यहाँ का बुद्धिजीवी वर्ग उच्चवर्णीय था. इस वर्ग पर निर्भर रहना अंग्रेजों के लिये आवश्यक था. राज्य अंग्रेजों का था लेकिन सत्ता ब्राह्मणों के हाथों में थीं. यहाँ के शूद्र और अतिशूद्र बेबस और बेसहारा थे, वे शोषित थे. उनका जीवन विस्थापित था. धार्मिक और सामाजिक दासता के नीचे वे दबे हुअे थे. वे स्वतंत्रता की साँस भी नहीं ले सक्ते थे. महात्मा फुलेजी का संघर्ष शोषण करने वाले प्रस्थापित वर्गों के ख़िलाफ़ था. शोषित वर्गो के लोगों में वे एक नई चेतना लाना चाहते थे. विस्थापितों के वे सरसेनापति बने. उनके हाथों में वे शिक्षा के माध्यम के द्वारा मानवी अधिकारों के शस्त्र देना चाहते थे.

महात्मा फुले अंग्रेजी शासकों को चेतावनी देते रहे कि वे निचले तबकों के लोगों को शिक्षा की सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें. हर गाँव में पाठशाला खोलें. महिलाओं का उत्पीडन रोक दें. साहूकारों का ज़ुल्म समाप्त करें. खेती की उपज बढाने के लिये आधुनिक ज्ञान और साधन मुहैय्या करें. सरकारी सेवाओं में बहुजनों और जनजातियों को उनकी संख्या के अनुपात में हिस्सा दें. फुलेजी ने कईबार अंग्रेजी हुकूमत की सराहना की है और कड़ी आलोचना भी की है. वे निर्भीक और निर्भय थे.

महात्मा जोतिराव फुले के नाम और काम से उनकी धर्मपत्नी सावित्रीबाई का नाम और काम हमेशा के लिये जुड़ा हुआ है. दोनों की भाग्यरेखा और कर्मरेखा एक ही थी. जोतिराव और सावित्रीने कर्म को ज्ञान की आँखें और ज्ञान को कर्म के हाथ दिये. सावित्रीबाई जोतिराव के ज़ीवन की मानों ज्योत थीं. ये दोनों जीवनभर गरीब और पीडित लोगों के जीवन में आनंद का प्रकाश लाने के लिये जलते रहे. उन्होंने अपने घर में एक बालहत्या प्रतिबंधक गृह शुरु किया (1863). कोई भी विधवा वहाँ जाकर बच्चे को जन्म दे सकती थी. उस विधवाका नाम गुप्त रखा जाता था. बालहत्या करने से कई विधवाओं को उन्होंने रोका. ऐसीही एक ब्राह्मण विधवा के पुत्रको उन्होंने गोद लिया. उन्होंने उसका नाम ' यशवंत ' रखा. जोतिराव और सावित्री की अपनी संतान नहीं थी. यशवंत को ही उन्होंने अपना पुत्र माना. उसका पालन-पोषण किया. उसे पढ़ाया और डाक्टर बनाया. इतनाही नहीं, वसीयत बनाकर उन्होंने यशवंत को अपनी जायदाद दी.

फुलेजी ने पुनर्विवाह को प्रोत्साहन दिया. ब्राह्मण विधवाओं के केशवपन अर्थात् केशमुंडन के ख़िलाफ़ उन्होंने आवाज उठाई. अछूतों के लिए अपने घर का पानी

का हौज खुला कर दिया. 1873 में ' सत्यशोधक समाज ' की स्थापना की. पिछड़ी जातियों का संगठन करने के लिये उसकी आवश्यकता थी. महाराष्ट्र में सामाजिक जीवन पर सत्यशोधक समाज के कार्य का गहरा परिणाम हुआ. इस संगठन ने पुरोहितों का विरोध किया. किसानों के मन में विद्रोह की भावना पैदा की.

महात्मा फुले परंपराभंजक थे. कर्मकांड पर उन्होंने आघात किये. वे बुद्धिवादी थे. धर्मग्रंथों का निर्माण ईश्वरने किया है इस बात पर उनका विश्वास नहीं था. स्वर्ग और नरक की कल्पना उन्हें मंजूर नहीं थी. जन्मतः कोई श्रेष्ठ होता है, और कोई नीच, इस विचार का उन्होंने खंडन किया. ईश्वर को उन्हों ने ' निर्मीक ' कहा. सारे मानव समान हैं, इस सिद्धान्त पर वे अटल रहे. इहवादी जीवन मार्ग पर चलने से ही हमारी प्रगति हो सकती है, इस बात पर वे बल देते रहे.

फुलेजी हर ' भेद ' के ख़िलाफ़ थे. भेदनीति ही विषमता और अन्याय को जन्म देती है. विषमता और अन्याय की जब परिसीमा होती है, तब गुलामी जन्म लेती है. गरीब और पीडित लोगों की पीठ पर ही गुलामी सवार होती है. सामाजिक गुलामी का अधिकतम प्रभाव महिलाओं पर होता है. इस देश में ब्राह्मणों ने शूद्रों पर धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक गुलामगीरी का बोझ रखा. अस्पृश्यता सामाजिक गुलामगीरी का निकृष्ट रूप है. गुलामी की विचारधारा उँच-नीच की नींव पर खड़ी है. उस नींव को उखाड़ने का प्रयास फुलेजीने किया.

इस क्रांतिवादी पुरुषने स्वयं से और समाज से कुछ मूलभूत प्रश्न पूछे. वे थे—

— मनुष्य–मनुष्य में भेद क्यों?

— स्त्री और पुरुष में भेद क्यों?

— ईश्वर और भक्त के बीच दलाल क्यों?

— धर्मभेद और जातिभेद किसलिये?

— इतने सारे धर्मों की आवश्यकता ही क्या है?

महात्मा फुलेजी इन प्रश्नों पर चिंतन करते रहे. हर प्रकार के भेद को उखाड़ने का उन्होंने भरसक प्रयास किया. उन्होंने इस प्रकार के ' क्यों ', ' किस लिये ' और ' क्या है ' के उत्तर पाने के लिये धर्मग्रंथों को पढ़ा, इतिहास की छान-बीन की और समाज में रहने वाले लोगों के विचारों को जानने की कोशिश की. इन सभी भेदों का कारण स्वार्थ ही है, यह बात उनके ध्यान में आयी. यह स्वार्थ अलग-अलग रूप और रंग धारण करता रहा है. वह कभी जाति का रूप लेता है और कभी धर्म का. भेद समानता नहीं चाहता. असमानता के मार्ग पर चल कर उसे विषमता की ओर जाने की इच्छा होती है. महात्मा फुलेजी समानता चाहते थे. स्त्री-पुरुष में

समानता, अलग-अलग जाति-संप्रदायों में समानता, मनुष्य-मनुष्य में समानता वे प्रस्थापित करना चाहते थे. भेद जब मिट जाता है, तब समानता उसका स्थान लेती है.

फुलेजी ने स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ माना है. शायद दुनिया के इतिहास में वे एकमेव पुरुष थे कि जिसने स्त्री को पुरुष के समानही नहीं, अपितु श्रेष्ठ माना. किसी भी धर्म या संस्कृति ने स्त्री को पुरुष के समान नहीं माना है. धर्मग्रथों का निर्माण पुरुषों ने किया है, हो सकता है इसी कारण स्त्री-जाति पर पुरुषों ने अन्याय किया. फुलेजी ने इसी तर्क को अपनाया है. यदि महिलाओं ने धर्मग्रंथों का निर्माण किया होता तो इस प्रकार का पक्षपात न हुआ होता. मनुस्मृति जैसे ग्रंथों ने तो स्त्री और शूद्रों पर बहुत बड़ा अन्याय किया. इसीलिये इस ग्रंथ को जला डालने की सलाह महात्मा फुलेने दी. धर्मग्रंथ ईश्वरनिर्मित हैं इस बात पर उनका विश्वास नहीं था. मानवी अधिकार और कर्तव्यों पर आधारित नीतिशास्त्र को ही उन्होंने धर्म माना. 'सार्वजनिक सत्यधर्म' यह उनकी पुस्तक मानव के अधिकारों और कर्तव्यों पर बल देती है. मानव के अधिकारों की रक्षा करना, यही राज्य या राष्ट्र का कर्तव्य होता है. जब जब आम लोगों के अधिकारों को कुचल दिया जाता है, तब तब गुलामगीरी जन्म लेती है. गुलामगीरी और स्वतंत्रता ये महात्मा फुले के चिंतन के विषय थे. उनका साहित्य और कार्य इसी चिंतन की उपलब्धि है.

महात्मा फुले का साहित्यसंसार भी अनोखा है. उनकी विचार संपदा हमारी विरासत है. 'तृतीय रत्न' यह उनका नाटक मराठी में लिखा हुआ पहला नाटक है. 1855 में उसकी रचना हुई. उन्होंने कविता की रचना भी की. 'छत्रपति शिवाजी राजा भोंसला' और 'ब्राह्मणों का चातुर्य' ये उनकी पद्यरचनाएँ हैं. पद्य में उन्हों ने 'अखंड' लिखे. 'गुलामगिरी', 'किसान का कोड़ा' और 'सार्वजनिक सत्यधर्म' इन पुस्तकों का मराठी गद्य-साहित्य में विशेष स्थान है. महात्मा फुले मराठी के टॉमस पेन थे. क्रांतिकारी विचारों के वे 'निर्भीक' थे. उनके विचारों में क्रांति की ज्वालाएँ हैं. नवनिर्माण का सामर्थ्य भी उनके विचारों में है.

'गुलामगिरी' इस ग्रंथ की रचना फुलेजीने 1873 में की, शूद्रों की मुक्ति का वह घोषणापत्र (Manifesto) था ऐसा हम मान सकते हैं. आर्य-भट्टों ने शूद्रोंपर किस प्रकार के जुल्म और अन्याय किये, इसका कथन इस छोटेसे ग्रंथ में किया गया है. इतिहास, धर्मशास्त्र, मिथक आदि माध्यमों के द्वारा आर्य-भट्टों ने शूद्रोंपर अर्थात् किसान, मजदूर, पिछड़ी जातियों और जनजातियों के लोगोंपर धार्मिक और सामाजिक गुलामगीरी का बोझ रखा. इस गुलामगीरी का विश्लेषण फुलेजीने इस ग्रंथ में किया है.

जोतिरावजीने इस ग्रंथ को युनायटेड स्टेट्स के उन सदाचारी लोगों को समर्पित किया है, जिन्होंने नीग्रो गुलामों को गुलामी से मुक्त करने की उदारता दिखाई. यहाँ के शूद्रातिशूद्रों को ब्राह्मणों की दासतासे मुक्त करने के लिये हमारे देशबंधु उनसे प्रेरणा हासिल करेंगे, इस प्रकार की आशा फुलेजीने अपनी अर्पण-पत्रिका में व्यक्त की है.

फुलेजीने ' गुलामगिरी ' ग्रंथ के लिये दो प्रस्तावनाएँ लिखीं हैं. एक मराठी में और दूसरी अंग्रेजी में. अंग्रेजी में अलग प्रस्तावना लिखने का कारण यह था कि विदेशी लोग इस अमानुषताभरी दासता की ओर ध्यान देंगे. यहाँ की गुलामी नीग्रो गुलामी से अधिक, जटिल, क्रूर और घृणास्पद थी. नीग्रो गुलामी को धर्मग्रंथोंका आधार नहीं था. लेकिन यहाँ की गुलामी को धर्मशास्त्रोंका आधार था. उसकी जड़े प्राचीन थीं. वे बहुत गहराई तक पहुँच चुकी थीं. यह दासता केवल शारीरिक नहीं थी. वह मानसिक भी थी. उसने शूद्रों और अतिशूद्रों का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक शोषण किया. उसने उनके आत्मविश्वास और स्वाभिमान को ही ख़त्म किया. मानसिक दासता व्यक्ति और समाज को गतिहीन बनाती है. भारतीय समाज के सदियों तक गतिहीन रहने का यही कारण है. यह पाप यहाँ के ब्राह्मणों ने किया, यह फुलेजी का कहना था. इस मानसिक गुलामगीरी का गंदा चेहरा दुनिया के लोगों को बताने के लिये और उस गुलामगीरी की जड़ें उखाड़ने के लिये महात्मा फुलेने यह ग्रंथ लिखा.

महात्मा फुले हर प्रकार के शोषण के ख़िलाफ़ थे. इस पुस्तक में ब्राह्मणों के शोषण के विरुद्ध तो उन्होंने आवाज़ उठाई ही है, लेकिन उसके साथ साथ उन्होंने अंग्रजों के शोषण के ख़िलाफ़ भी अपनी उंगली उठाई है.

' गुलामगिरी ' में सोलह अध्याय हैं. भट्ट-ब्राह्मणों ने शूद्रों और अतिशूद्रों को किस प्रकार से शिक्षा, ज़मीन और संपत्ति के साधनों से वंचित किया, इसका विश्लेषण इस पुस्तक की विशेषता है.

शूद्र और अतिशूद्र यहाँ के मूल निवासी हैं. सही मानों में वे इस देश के भूमिपुत्र हैं. आर्य लोग बाहर से यहाँ आये, और उनका यहाँ के मूल निवासियों से सदियों तक संघर्ष होता रहा. कई प्रकार के षड़यंत्रों का सहारा लेकर उन्होंने शूद्रातिशूद्रों को जीता और फिर दासता की खाई में उनको ढकेल दिया.

आर्य लोग बाहर से आये हैं, यह बात तो अब इतिहासकारों ने कबूल की है. महात्मा फुलेजी का कहना है कि वे ईरान से भारत में आये. इतिहासकार इसको मानने के लिये तैय्यार नहीं है. मध्य एशियासे वे यहाँ आये, यह उनका कहना है. लेकिन श्री देवीसिंह चौहान जैसे संशोधकोंने भाषाशास्त्रका आधार लेकर आज

यह साबित किया है कि आर्य ईरान से भारत में आये थे. इससे फुले के अनुमान को पुष्ठि ही मिलती है. फुलेजीने शब्दों का आधार लेकर ही कुछ घटनाओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की है. फिर भी हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि महात्मा फुले इतिहासकार नहीं थे. आर्य लोग बाहर से आये और यहाँ के लोगों का उन्होंने शोषण किया, यह उनकी मुख्य दलील थी.

'गुलामगिरी' में महात्मा फुलेजीनें विभिन्न अवतारोंकी कथाओंका उल्लेख किया है. सुर-असुरों के संघर्ष की चर्चा की है. ब्राह्मणोंने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये जिन मिथकों का आधार लिया है, उनका विश्लेषण भी किया है. मत्स्य, कच्छ, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम आदि अवतारों के संबंध में जो पौराणिक कथाएँ हैं, उनकी छानबीन फुलेजीने कठोरता के साथ की है. नृसिंह और वामनने अपने शत्रुओं को छल-कपटसे पराजित किया. परशुराम तो क्रूरता का प्रतीक था. वह इतना क्रूर था कि उसने अपनी माँ को भी मार डाला. वास्तव में वह पाषाण-हृदयी था. क्षत्रियों को उसने पूर्णतः निर्वंश किया. क्षत्रियों की औरतों की हत्या उसने की. बालकों को मृत्यु के घाट उतार दिया. फिर भी ब्राह्मणोंने उसकी क्रूरता को वीरता समझकर उसका गौरव किया है. क्षत्रिय क्रूर थे और वे न्याय के पक्षधर नहीं थे, इसी लिये परशुराम ने उनको मार डाला, ऐसा उसके संबंध में पुराणों में लिखा है. इस क्रूरकर्मा को दुर्भाग्यसे विश्वकर्मा माना गया. ब्राह्मणों ने हमेशा कपटनीतिका अवलंब किया. शूद्रों को विद्या और संपत्ति से वंचित किया. वरिष्ठ वर्णों की सेवा करना उनका धर्म है, यही वे सदियों से कहते आये. धर्मग्रंथों में इस प्रकार के विचार उन्होंने लिखें. ईश्वर ही धर्मग्रंथों का निर्माणकर्ता है और इसी कारण वे अपरिवर्तनीय और पवित्र हैं. इस प्रकार की धारणा उन्होंने लोगों के मन में पैदा की. वर्णसे ऊँचा होने का अहंकार उनके मन में पनपता रहा. अंग्रेजों के राज्य में भी वे बहुजनों का शोषण करते रहे.

ब्राह्मणों ने जो धर्मग्रंथ लिखे, उनमें कई मिथक हैं. मिथकों के द्वारा समाज की मनोवृत्ति का दर्शन होता है. पुराणों में जो मिथक हैं, उन में ब्राह्मणों के श्रेष्ठत्व का बखान है. महात्मा फुलेजी ने इन मिथकों का भंडाफोड दिया है. वामनावतार की जो कथाएँ हैं, उनका उन्होंने विश्लेषण किया है. वामन कपटी था. किसी भी छल-कपट का वह सहारा ले सकता था. बली का उसने विश्वासघात किया. बली शूद्रों का राजा था. उसका राज्य गरीब लोगों की भलाई के लिये था. बली किसान, मजदूर और निम्न जातियों का राजा था. ब्राह्मणों द्वारा लिखी हुई कथाओं में उसके बलशाली और गुणवान् होने का वर्णन नहीं मिलता. परंतु लोककथाओं में उसकी महानता का दर्शन होता है. लोकसाहित्य को ब्राह्मणों की मान्यता नहीं है. लेकिन

वह समान्तर साहित्य है. लोगों की समान्तर संस्कृति उस में प्रतिबिंबित होती हैं. प्रमाणित साहित्य में जो मिथक हैं, उसका आधार ब्राह्मणों ने इतिहास की रचना करने के लिये लिया. महात्मा फुलेजी ने लोक कथाओं में जो मिथक हैं, उनका आधार लेकर सही इतिहास की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया. उन्होंने हमें एक नई दृष्टि दी. वे पराजितों का इतिहास लोगों के सामने लाये. राजा बली की सही प्रतिमा दुनियाके सामने वे लाये. महाराष्ट्र में दिवाली के समय महिलायें अपने भाईयोंके सामने आरती उतारते समय आज भी बली राजा का नाम लेकर शुभचिंतन करती हैं. वे कहती हैं, ' दुखदर्द जाने दे और बली का राज्य आने दे ' महाराष्ट्र में किसान को बलीराजा के नाम से संबोधित किया जाता है.

महात्मा फुलेजीने ब्राह्मणी परंपराओंका ' गुलामगिरी ' और अन्य ग्रथों मे हनन किया है. वे वास्तव में ' बलीराज्य ' चाहते थे. किसानों और मजदूरोंका राज्य ही सुख, शांति और प्रगति का राज्य हो सकता है, ऐसी उनकी धारणा थी. उनके सामने राजा बली का उदाहरण था. राजा बली पौराणिक नायक था. इस पौराणिक नायक के साथ साथ उन्होंने एक ऐतिहासिक नायक भी लोगों के सामने रखा. वह था छत्रपति शिवाजी. छत्रपति शिवाजी महाराज सामान्य लोगों के राजा थे. वे ' कुणबी ' लोगों के राजा थे. ब्राह्मण लेखकों ने उनको ' गो ब्राह्मण प्रतिपालक ' कहा. वास्तव मे वे ' दीन दलित प्रतिपालक ' थे. उनका राज्य केवल गोमाता और ब्राह्मणों की रक्षा के लिये नहीं था. वह था शूद्रों, अतिशूद्रों और स्त्री-जाति की रक्षा के लिये. महात्मा फुले राजा बली और छत्रपति शिवाजीमहाराज का उदाहरण लोगों के सामने रखकर उन्हें एक नया सम्मान और नई पहचान देना चाहते थे. गुलामगीरी के स्थान पर स्वतंत्रता की प्रतिष्ठापना हो, यही उनकी मनोकामना थी.

जोतिराव फुले का पूरा साहित्य मराठी में है. सामान्य लोगों के लिये उन्होंने अपना पूरा साहित्य मराठी में लिखा. उनके क्रांतिकारी विचार अंग्रेजी और हिंदी में अनुवादित करने की योजना महाराष्ट्र सरकारने बनाई. 1990-91 यह वर्ष महात्मा जोतिराव फुले की महानिर्वाण-शताब्दी का वर्ष था. इस महानिर्वाण-शताब्दी वर्ष में इस महापुरुष की स्मृति में कई कार्यक्रमों का आयोजन हुआ. महाराष्ट्र राज्य की सरकार ने उनका पूरा साहित्य अमराठी लोगों के लिये हिंदी और अंग्रेजी में अनुवादित करने का संकल्प किया. ' महात्मा जोतिराव फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति ' का गठन इसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये ही किया गया है. वास्तव में यह निर्णय महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री शरद पवारजीने लिया. यह समिति उनके प्रति अपना ऋण व्यक्त करती है. इस पवित्र कार्य के पीछे उनकी ही प्रेरणा है. ' गुलामगिरी ' ग्रंथ का हिंदी में अनुवाद करना इस योजना का ही एक हिस्सा है.

‘ गुलामगिरी ’ का हिंदी में अनुवाद किया है प्रा. वेदकुमार वेदालंकारजी ने. मराठी और हिंदी दोनों भाषाओंपर उनका प्रभुत्व है. महात्मा फुले का साहित्य दूसरी भाषाओंमें अनुवादित करना यह एक प्रकार की चुनौती ही है. फुलेजी की मराठी भाषा विशेष ढंग की है. उनकी शैली भी अपने ढंग की शैली है. महात्मा फुले के विचारों और उन विचारों के पीछे छिपी हुई भावनाओं को हिंदी में व्यक्त करना कोई सरल काम नहीं है. वेदकुमारजी ने इस चुनौती को स्वीकार किया. अनुवादक के लिए मूल लेखक के विचारों से और भावनाओं से एकरूप होना ज़रूरी होता है. वेदकुमार वेदालंकारजी महात्मा फुले के विचारों और भावनाओं से एकरूप हो गये हैं. ‘ गुलामगिरी ’ का यह अनुवाद उसका ही परिणाम है. हम उनके आभारी हैं.

उच्च और तंत्रशिक्षा मंत्री डॉ. पतंगराव कदम और भूतपुर्व मंत्री ना. प्रभाकर धारकर का सहयोग भी इस काम में महत्त्वपूर्ण रहा है. उनको मैं धन्यवाद देता हूँ.

हमारे मित्र श्री हरि नरके प्रकाशन समिति के समन्वयकर्ता हैं. इस पुस्तक के लिये भी उनको काफी श्रम उठाने पड़े हैं. समिति की ओर से मैं उनको भी धन्यवाद देता हूँ.

आशा है, हमारे हिंदी पाठक ‘ गुलामगिरी ’ इस पुस्तक का स्वागत करेंगे. मुझे आशा है कि उन्हें यह किताब पढ़कर हर प्रकार की गुलामी के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा मिलेगी. महात्मा फुले के विचारों में सामाजिक क्रांतिका एक तूफान छुपा हुआ है. उस तूफान को चारों दिशाओं मे फैलाने का काम हमें करना है.

लातूर

(प्राचार्य डॉ. जनार्दन वाघमारे)
कार्याध्यक्ष.

अनुवादकीय

28 नवंबर 1890 को महात्मा जोतीराव फुले का देहावसान हुआ. सन् 1990 में महाराष्ट्र की पत्र-पत्रिकाओं में महात्मा फुले की निर्वाण-शताब्दी मनाने की चर्चा ज़ोर-शोरसे चल रही थी तथा महाराष्ट्र सरकार भी इस समाज-सुधारक, क्रान्तिदर्शी महामानव की निर्वाण-शताब्दी मनाने के सम्बन्ध मे विविध योजनाएँ बना रही थी. मैंने उससे पूर्व महात्मा फुले की एक-दो पुस्तकें ही पढ़ी थीं. निर्वाण-शताब्दी के उत्साह पूर्ण वातावरण से मुझमें महात्मा फुले के समस्त साहित्य के अध्ययन की प्रेरणा जाग उठी. उनके सम्पूर्ण गद्य एवं पद्य साहित्य को पढ़कर मन में विचार उठा कि यह कैसी दुःखद स्थिति है कि ऐसे मानवमात्र के हितैषी, समता एवं सत्य के पुजारी, समाजसुधारक के क्रान्तिकारी विचार अभी तक हिन्दी पाठकों तक नहीं पहुँचे हैं. संयोगवश इसी समय महाराष्ट्र सरकार द्वारा नियुक्त महात्मा जोतीराव फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति ने महात्मा फुले के समस्त साहित्य को हिन्दी तथा अंगरेजी भाषाओं में अनुवादित एवं प्रकाशित करने की योजना बनाई. साहित्य प्रकाशन समिति ने तथा कार्याध्यक्ष प्राचार्य डॉ. जनार्दनराव वाघमारे ने हिन्दी-अनुवाद करने का उत्तरदायित्व मुझे सौंपा. यह मेरा परम सौभाग्य था।

एक अनुवादक के नाते महात्मा फुले के धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं कृषिविषयक विचारों के विषय में मेरा कुछ कहना अनावश्यक होगा, क्योंकि वे विचार तो उनके ग्रन्थों की प्रत्येक पंक्ति से प्रगट ही रहे हैं. तथापि उनकी संमिश्र एवं प्रदीर्घ वाक्यों वाली मराठी भाषा, उनके द्वारा प्रयुक्त मराठी ग्रामीण अंचल की बोली के अनेक ठेठ शब्द, उनकी तीखी तेज़ धार वाली भाषा-शैली तथा उनके व्यंग्यभरे चुटीले वाक्य, सौ वर्ष पुरानी मराठी भाषा आदि का अनुवाद करना अपने आप में एक चुनौती थी. साथ ही उनकी कृतियों में कबीरदास के समान ही सामाजिक विषमता, अन्याय, जात-पात, ऊँच-नीच आदि के प्रति तीव्र विरोध दिखाई देता है, शूद्रों-अतिशूद्रों के उत्कर्ष के प्रति जैसी सच्ची लगन दिखाई देती है, स्थापित परंपराओं, कुरीतियों के विरुद्ध जो विद्रोह दिखलाई देता है, उस समस्त विद्रोह-भाव एंव रोष को

हिन्दी में उसी तीव्रता एवं प्रभाव के साथ ला पाना सचमुच एक अति कठिन कार्य था. यह अति कठिन कार्य मेरे हाथों सफलतापूर्वक सम्पन्न हो पाया, इसकी मुझे प्रसन्नता है. विद्वान् हिन्दी पाठक एवं आलोचकगण भी इसे सन्तोषजनक पायेंगे, ऐसा विश्वास है.

उन्नीसवीं सदी के भारत में, विशेषतः महाराष्ट्र में, धार्मिक, सामाजिक विषमता तथा जन्मगत ऊँच-नीच, विद्या-प्राप्ति पर लगी पाबंदी आदि के विरुद्ध घनघोर घोष गुँजाने वाले महापुरुषों में महात्मा फुले निसन्देह अग्रणी माने जायेंगे. उनकी कृतियों में ब्राह्मणों, पंडित-पुरोहितों के प्रति जो रोष तथा विरोध दिखाई देता है, वह वास्तव में ब्राह्मण-वृत्ति या ब्राह्मण्य के प्रति है, ब्राह्मण जाति के प्रति नहीं, यह तथ्य उनके समस्त साहित्य को तथा उनके जीवन-चरित्र को पढ़कर सहज ही जाना जा सकता है. अत एव आवश्यक है कि महाराष्ट्र सरकार यथासमय इस महापुरुषके जीवन-चरित्र को भी हिन्दी जगत् तक पहुँचाये.

महात्मा फुले के सामाजिक समता एवं मानवतावादी सम्पूर्ण साहित्य को हिन्दी पाठकों तक पहुँचाने का जो स्तुत्य कार्य महाराष्ट्र शासन द्वारा नियुक्त 'महात्मा जोतीराव फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति' कर रही है, उसके मूल प्रेरक हैं महाराष्ट्र के मान्यवर मुख्यमंत्री शरद पवारजी तथा समिति के अध्यक्ष एवं उच्च व तंत्र शिक्षा मंत्री माननीय डॉ. पतंगराव कदमजी. आप दोनों के आभार मानना मैं अपना परम कर्तव्य मानता हूँ, क्योंकि इनके मार्गदर्शन एवं सहयोग के बिना यह कार्य कदापि संपन्न न हो पाता.

हिन्दी अनुवाद के समय संदर्भ तथा टिप्पणियाँ देते समय मैंने श्री य. दि. फडके द्वारा संपादित 'महात्मा फुले समग्र वाङमय' (सुधारित पाचवी आवृत्ती, 12 नवम्बर 1991) का आधार लिया है. इस सहयोग के लिए मैं श्री य. दि. फडके का आभारी हूँ. ग्रंथ का निर्माण प्रबंध समिती के समन्वयकर्ता श्री हरि नरके ने किया है. मैं उनको भी धन्यवाद देता हूँ.

आशा है कि महात्मा फुले के साहित्य का यह हिन्दी-अनुवाद सामाजिक अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने वाले कर्मवीरों के लिए तो प्रेरणादायी होगा ही, इतिहास, समाज-शास्त्र एवं शोध-कार्य के अध्यताओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा.

विद्यानगर,
उस्मानाबाद (महाराष्ट्र) 413 501.

प्रा. वेद कुमार वेदालंकार,
अनुवादक.

समन्वयकर्ता कार्यालय से

महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति के अनेक उपक्रमों मे से एक है : " महात्मा फुले समस्त साहित्य " का हिंदी में अनुवाद प्रकाशित करना. महात्माजी ने जो क्रांतिकारी विचार मराठी ग्रंथों में लिखे हैं उनको हिंदी भाषा में अनूदित करके उन्हें महाराष्ट्र की सीमाओं के बाहर के अध्येताओं और कार्यकर्ताओं तक पहुँचाना ही आज समय की माँग है. 125 साल पहले जोतीराव ने जिन विचारों से महाराष्ट्र में सत्यशोधक आंदोलन की नींव रखी थी और शूद्र-अतिशूद्र व महिलाओं में सामाजिक समता का तूफान खड़ा किया था, उन विचारोंको मराठी भाषी लोगों तक ही सीमित रखना उचित नहीं है, इस विचार से यह कार्य शुरू किया गया हैं. यह दुर्भाग्य की बात है कि जोतीराव के देहान्त के सौ साल गुजरने के बाद तक इस कार्य की ओर किसीका भी ध्यान नहीं गया. उनकी स्मृतिशताब्दी वर्ष में इस महत्त्वपूर्ण कार्य को पुरा करने के उद्देश्य सें महाराष्ट्र शासन ने यह समिति गठित की है.

समिति ने मराठी और हिंदी दोनो भाषाओं में समान रूचि और गति रखनेवाले पं. वसंत देव और प्रा. वेदकुमार वेदालंकार को यह अनुवाद कार्य सौंपा. महात्मा जोतीराव फुले का समस्त साहित्य हिंदी में पांच खंडों में प्रकाशित करने की योजना समिति ने बनायी है. इस योजनानुसार यह खंड 1. " गुलामी " प्रकाशित किया जा रहा है. शेष चार खंड शीघ्र ही प्रकाशित किए जायेंगे. 2. सार्वजनिक सत्यधर्म पुस्तक, 3. किसान का कोड़ा, 4. अखंड (कविता), 5. तीसरी आँख (नाटक).

अधिकांश हिंदी-भाषी तथा हिंदी जाननेवाले अ-मराठी भाषी लोग उचित माध्यमों के अभाव के कारण महात्मा फुलेजी के संघर्षशील जीवनकार्यों, विचारों और साहित्य से अवगत नहीं हैं. ऐसे पाठकों को महात्मा फुलेजी की जीवनी का परिचय देने के उद्देश्य से समिति ने श्री मुरलीधर जगताप द्वारा लिखित " युगपुरुष महात्मा फुले " पुस्तक प्रकाशित की है. फुलेजी के समग्र साहित्य तथा प्रेरणादायी विचारों का परिचय देनेवाले मौलिक लेखों से संबंधित पुस्तक " महात्मा फुले : साहित्य और विचार ", संपादक–हरि नरके का भी जोरदार स्वागत हुआ है. आज हम आपकी सेवा में यह तीसरा हिंदी ग्रंथ प्रस्तुत कर रहे हैं.

इस ग्रंथ के प्रकाशन में और समिति के कामकाज में हार्दिक रूचि रखकर हमें प्रेरणा देनेवाले हमारे मुख्यमंत्री श्री शरद पवार, उच्च और तंत्र शिक्षा मंत्री डॉ. पतंगराव कदम, राज्यमंत्री श्री विलास शृंगारपवार, भूतपूर्व मंत्री श्री प्रभाकर धारकर और श्री सदाशिवराव मंडलिक, समिति के कार्याध्यक्ष और स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाडा विश्वविद्यालय, नांदेड के उपकुलपति डॉ. जनार्दन वाघमारे, टेल्को के चेयरमैन श्री रतन टाटा, वाइस चेयरमैन श्री जे. ई. तलौलीकर और निवासी संचालक श्री वि. म. रावल का मैं कृतज्ञ हूँ.

गृहनिर्माण मंत्री श्री छगन भुजबळ, महाराष्ट्र राज्य साहित्य और संस्कृति मंडल के अध्यक्ष डॉ. य. दि. फडके, महात्मा फुले समता प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डॉ. बाबा आढाव, सत्यशोधक महिला कार्यकर्ता और समिति की गणमान्य सदस्या श्रीमती कमल विचारे के मार्गदर्शन से हमें सदैव प्रोत्साहन मिलता रहता है. उच्च व तंत्र शिक्षा विभाग के सचिव श्री नवजीवन लखनपाल, विभाग के भूतपूर्व सचिव श्री जनार्दन जाधव और श्रीमती कुमुद बंसल के सहयोग से ही समिति ने इतना काम किया है.

उच्च शिक्षा विभाग की उपसचिव श्रीमती दी. अ. कारेकर, भूतपूर्व उपसचिव श्री बी. टी. कांबळे, डॉ. केशव फाळके, श्रीमती सु. सु. राजे, संचालक श्री के. पी. सोनावणे, उपसंचालक श्री ज. मो. अभ्यंकर, सामान्य प्रशासन विभाग के उपसचिव श्री अ. व. आंबेरकर, श्री दि. का. खरात, समिति कार्यालय की श्रीमती सुजाता काळे, श्रीमती मनीषा केणी, श्री मारूती पाड़ावे, शासकीय मध्यवर्ती मुद्रणालय के संचालक श्री प्रकाश मोरे, उपसंचालक श्री प्र. ल. पूरकर, प्रबंधक श्री अ. चाँ. सैय्यद, उनका समस्त कर्मचारी वर्ग, मुखपृष्ठकर्ता श्री गजानन शेपाळ, "महाराष्ट्र मानस" के संपादक व मेरे घनिष्ठ मित्र, श्री आत्माराम, "महात्मा फुले और डॉ. आंबेडकर प्रकल्प समिति" के अध्यक्ष श्री दादासाहेब रूपवते, प्रा. वेदकुमार वेदालंकार एवं सहयोगी व मित्र सर्वश्री मुरलीधर जगताप, ज. रा. खैरनार और बी. बी. सिंह का मैं ऋणी हूँ. आशा है, पाठकगण इस पुस्तक से लाभ उठाएंगे और अपने बहुमूल्य विचारों से हमारा पथप्रदर्शन करेंगे.

भवदीय,

हरि नरके

(हरि नरके)

मुंबई, दिनांक 24 सितम्बर 1994 (सत्यशोधक समाज स्थापना दिवस)
समन्वयकर्ता कार्यालय, महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति,
महाराष्ट्र शासन, बैरक नं. 18, मंत्रालय के सामने, फ्री प्रेस जर्नल रोड,
मुंबई 400 021 (महाराष्ट्र) दूरभाष : 283 56 10.

विषय सूची

पृष्ठ क्रमांक

SLAVERY.

(IN THS CIVILISED BRITISH GOVERNMENT UNDER THE CLOAK OF BRAHMANISM)

EXPOSED BY

JOTIRAO GOVINDRAW FULE

(ब्राह्मणी धर्माच्या आडपडद्यांत)

गुलामगिरी.

(सुधारल्या इंग्लिश राज्यांत.)

हें लहानसें पुस्तक

जोतीराव गोविंदराव फुले

यांनीं

लोक हितार्थ केले

तें

पुणें येथें "पुना सिटी प्रेस" छापखान्यांत छापलें.

किंमत १२ आणे

गरीब शूद्रादिअतिशूद्रांस ६ आणे

SLAVERY

(IN THE CIVILISED BRITISH GOVERNMENT UNDER THE CLOCK OF BRAHMANISM)

EXPOSED BY

JOTIRAO GOVINDRAW FULE

(ब्राह्मण-धर्म की आड में होने वाली)

गुलामी

(सुसंस्कृत प्रगतिशील अंगरेजी राज्य में)

यह छोटी-सी पुस्तक

जोतीराव गोविंदराव फुले

ने

लोकहितार्थ रची.

इसे

पुणे के " पूना प्रिंटिंग प्रेस " में छपवाया.

किमत 12 आने

निर्धन शूद्रातिशूद्रों के लिए 6 आने

यूनाइटेड स्टेट्स के सदाचारी जनोंने
गुलामों को दासता से मुक्त करने के कार्य में
जो उदारता, निष्पक्षता एवं परोपकार वृत्ति दिखलाई
उस हेतु उनके सम्मानार्थ
यह छोटी-सी पुस्तक
मैं
उन्हें अति प्रीतिपूर्वक भेट करता हूँ एवं
आशा करता हूँ कि मेरे देशवासी बन्धु अपने भाई-
बन्धुओंको ब्राह्मणों की गुलामी से मुक्त करने हेतु
उस प्रशंसनीय कार्य का अनुकरण करेंगे.

ग्रंथकर्ता

DEDICATED TO

The good people of the
United States
as a token of admiration for their
sublime, disinterested and
self-sacrificing devotion
in the cause of Negro-slavery;
and with an earnest desire, that
my countrymen may take their
noble example as their guide in
the emancipation of their Sudra Brothern
from the trammels of Brahmin thraldom.

——The Author

PREFACE

"The day that reduces a man to slavery takes from him the half of his virtue"—Homer

"Our system of Government in India is not calculated to raise the character of those subject to it, nor is the present system of education one to do more than *over-educate the few,* leaving the mass of the people as ignorant as ever and still more at the mercy of the few learned; in fact, it is an extension of the demoralizing Brahmin-ridden policy, which, perhaps, has more retarded the progress of civilization and improvement in India generally than anything else."

Col. G. J. Haly—*On Fisheries in India.*

"Many ages have elapsed since peculiar resources were afforded to the Brahmins; but the most considerate cosmopolite would hesitate to enroll them amongst the benefactors of the world. They boast of vast stores of ancient learning. They have amassed great riches, and been invested with unbounded power, but to what good end? They have cherished the most degrading superstitions and practised the most shameless impostures. They have arrogated to themselves the possession and enjoyment of the rarest gifts of fortune and perpetuated the most revolting system known to the world. It is only from a diminution of their abused power that we can hope to accomplish the great work of national regeneration."

Mead's *Sepoy Revolt.*

Recent researches have demonstrated beyond a shadow of doubt that the Brahmans were not the aborigines of India. At

some remote period of antiquity, probably more than 3,000 years ago, the Aryan progenitors of the present Brahmin Race descended upon the plains of Hindoostan from regions lying beyond the Indus, the Hindoo Koosh, and other adjoining tracts. According to Dr. Pritchard, the Ethnologist, they were an off-shoot of the Great Indo-European race, from whom the Persians, Medes, and other Iranian nations in Asia and the principal nations in Europe like-wise are descended. The affinity existing between the Zend, the Persian and Sanscrit languages, as also between all the European languages, unmistakably points to a common source of origin. It appears also more than probable that the original cradle of this race being an arid, sandy and mountainous region, and one ill calculated to afford them the sustenance which their growing wants required, they branched off into colonies, East and West. The extreme fertility of the soil in India, its rich productions, the proverbial wealth of its people, and the other inumerable gifts which this favoured land enjoys, and which have more recently tempted the cupidity of the western nations, no doubt, attracted the Aryans, who came to India, not as simple emigrants with peaceful intentions of colonization, but as conquerors. They appear to have been a race imbued with very high notions of self, extremely cunning, arrogant and bigoted. Such self-gratulatory, pride-flattering epithets as आर्य, भूदेव etc., with which they designated themselves, confirm us in our opinion of their primitive character, which they have preserved up to the present time, with, perhaps, little change for the better. The aborigines whom the Aryans subjugated, or displaced, appear to have been a hardy and brave people from the determined front which they offered to these interlopers. Such opprobrious terms, as (शूद्र) Sudra 'insignificant,' महारी 'the great foe' अत्यंज, चांडाळ etc. with which they designated them, undoubtedly show that originally they offered the greatest resistance in their power to their establishing themselves in the country, and hence the great

aversion and hatred in which they are held. From many customs* traditionally handed down to us, as well as from the mythological legends contained in the sacred books of the Brahmins, it is evident that there had been a hand struggle for ascendancy between the two races. The wars of Dev and Daitya, or the Rakshas, about which so many fictions are found scattered over the sacred books of the Brahmins, have certainly a reference to this primeval struggle. The original inhabitants with whom these earthborn Gods, the Brahmins, fought, were not inappropriately termed Rakshas, that is the protectors of the land. The incredible and foolish legends regarding their form and shape are no doubt mere chimeras, the fact being that these people were of superior stature and hardy make. Under such leaders as Brahma, Purshram and others, the Brahmins waged very protracted wars against the original inhabitants. They eventually succeeded in establishing their supremacy and subjugating the aborigines to their entire control. Accounts of these conquests, enveloped with a mass of incredible fiction, are found in the books of the Brahmins. In some instances they were compelled to emigrate, and in others wholesale extermination was resorted to. The cruelties which the European settlers practised on the American

*A most remarkable and striking corroboration of these views is to be found in the religious rites observed on some of the grand festivals which have a reference to Bali Raja, the great king who appears to have reigned once in the hearts and affections of the Sudras and whom the Brahmin rulers displaced. On the day of *Dushara,* the wife and sisters of a Dudra, when he returns from his worship of the *Shumi Tree* and after the distribution of its leaves, which are regarded on that day as equivalent to gold, amongst his friends, relations and acquaintances, he is greeted, at home with a welcome **इडा पिडा जावो आणि बळीचे राज्य येवो** "Let all troubles and misery go, and the kingdom of Bali come." Whereas the wife and sisters of a Brahmin place on that day in the foreground of the house an image of Bali, made generally of wheaten or other four, and when the Brahmin returns from his worship of the *Shumi Tree* he takes the stalk of it, pokes with it the belly of the image and then passes into the house. This contrariety, in the religious customs and usages obtaining amongst the Sudras and the Brahmins and of which many more examples might be adduced, can be explained on no other supposition but that which I have tried to confirm and elucidate in these pages.

Indians on their first settlement in the new world, had certainly their parallel in India on the advent of the Aryans and their subjugation of the aborigines. The cruelties and inhuman atrocities which Purshram committed on the Kshetrias, the people of this land, if we are to believe even one-tenth of what the legends say regarding him, surpass our belief and show that he was more a fiend than a God. Perhaps in the whole range of history it is scarcely possible to meet with such another character as that of Purshuram, so selfish, infamous, cruel and inhuman. The deeds of Nero, Alaric or Machiavelli sink into insignificance before the ferocity of Purshram. The myriads of men and defenceless children whom he butchered, simply with a view to the establishment of his coreligionists on a secure and permanent basis in this land, is a fact for which generations ought to execrate his name, rather than defy it.

This, in short, is the history of Brahmin domination in India. They originally settled on the banks of the Ganges whence they gradually spreadover the whole of India. In order, however, to keep a better hold on the people they devised that weired system of mythology, the ordination of caste, and the code of cruel and inhuman laws, to which we can find no parallel amongst other nations. They founded a system of priestcraft so galling in its tendency and operation, the like of which we can hardly find anywhere since the time of the Druids. The institution of caste, which has been the main object of their laws, had no existence among them originally. That it was an after-creation of their deep cunning is evident from their own writings. The highest rights, the highest privileges and gifts, and everything that would make the life of a Brahmin easy, smooth-going and happy-everthing that would conserve or flatter their self pride,—were specially inculcated and enjoined, whereas the Sudrās and Atisudrās were regarded with supreme hatred and contempt, and the

commonest rights of humanity were denied them. Their touch, nay, even their shadows, is deemed a pollution. They are considered as mere chattels, and their life of no more value than that of the meanest reptile; for it is enjoined that if a Brahmin " kill a cat or an ichenumon, the bird Chasha, or a frog or a dog, a lizard, an owl, a cow or a Sudra " he is absolved of his sin by performing the चांद्रायण प्रायश्चित्त, a fasting penance, perhaps for a few hours or a day and requiring not much labour or trouble. While for a Sudra to kill a Brahmin is considered the most heinous offence he could commit, and the forfeiture of his life is the only punishment his crime is considered to merit. Happily for our Sudra brethren of the present day our enlightened British Rulers have not recognized these preposterous, inhuman and unjust penal enactments of the Brahmin legislators. They no doubt regard them more as ridiculous fooleries than as equitable laws. Indeed, no man possessing even a grain of common sense would regard them as otherwise. Any one, who feels disposed to look a little more into the laws and ordinances as embodied in the *Manawa Dharma Shastra* and other works of the same class, would undoubtedly be impressed with the deep cunning underlying them all. It may not, perhaps, be out of place to cite here a few more instances in which the superiority or excellence of the Brahmins is held and enjoined on pain of Divine displeasure :

—The Brahmin is styled the Lord of the Universe, even equal to the God himself. He is to be worshipped, served and respected by all.

—A Brahmin can do no wrong.

—Never shall the King slay a Brahmin, though it has committed all possible crimes.

—To save the life of a Brahmin any falsehood may be told. There is no sin in it.

—No one is to take away anything belonging to a Brahmin.

—A king, though dying with want, must not receive any tax from a Brahmin, nor suffer him to be afflicted with hunger or the whole kingdom will be afflicted with famine.

—The feet of a Brahmin are holy. In his left foot reside all the तीर्थ (holy pilgrimages) and by dipping which into water he makes it as holy as the waters at the holiest of shrines.

—A Brahmin may compel a man of the servile class to perform servile duty, because such a man was created by the Almighty only for the purpose of serving Brahmins.

—A Sudra, though emancipated by his master, is not released from state of servitude; for, being born in a state which is natural to him, by whom can he be divested of his natural attributes?

—Let a Brahmin not give temporal advice nor spiritual counsel to a Sudra.

—No superfluous accumulation of wealth shall be made by a Sudra, even though he has the power to make it, since a servile man who has amassed riches becomes proud, and by his insolvence or neglect he gives pain even to Brahmins.

—If a Sudra cohabit with a Brahminee adultress, his life is to be taken. But if a Brahmin goes even unto the lawful wife of a Sudra he is exempted from all corporal punishment.

It would be needless to go on multiplying instances such as these. Hundreds of similar ordinances including many more of a worse character than these can be found scattered over their books. But what can have been the motives and objects of such cruel and inhuman Laws? They are, I believe, apparent to all but to the infatuated, the blind and the self-interested. Anyone who runs may even read them. Their main object in fabricating these falsehoods was to dupe the minds of the ignorant and to rivet firmly on them the chains of

perpetual bondage and slavery which their selfishness and cunning had forged. The severity of the laws as affecting the Sudrās, and the intense hatred with which they were regarded by the Brahmins can be explained on no other supposition but that there was, originally between the two, a deadly feud, arising as we have shown above, from the advent of the latter into this land. It is surprising to think what a mass of specious fiction these interlopers invented with a view to hold the original occupiers of the soil fast in their clutches, and rule securely for ages yet to come through the means of their credulity. Anyone who will consider well the whole history of Brahmin domination in India, and the thraldom under which it has retained the people even up to the present day, will agree with us in thinking that no language could be too harsh by which to characterise the selfish heartlessness and the consummate cunning of the Brahmin tyranny by which India has been so long governed. How far the Brahmins have succeeded in their endeavours to enslave the minds of the Sudrās and Atisudrās, those of them who have come to know the true state of matters know well to their cost. For generations past they have borne these chains of slavery and bondage. Innumerable Bhat writers, with the self-same objects as those of Manu and others of his class, added from time to time to the existing mass of legends, the idle phantasies of their own brains, and palmed them off upon the ignorant masses as of Divine inspiration, or as the acts of the Deity Himself. The most immoral, inhuman, unjust actions and deeds have been attributed to that Being who is our Creator, Governor and Protector, and who is all Holiness Himself. These blasphemous writings, the products of the distempered brains of these interlopers, were received as fospel truths, for to doubt them was considered as the most unpardonable of sins. The system of slavery, to which the Brahmins reduced the lower classes is in no respects inferior to that which obtained a few years ago in America. In the days of rigid

Brahmin dominancy, so lately as that of the time of the Peshwa, my Sudra brethren had even greater hardships and oppression practised upon them than what even the slaves in America had to suffer. To this system of selfish superstition and bigotry, we are to attribute the stagnation and all the evils under which India has been groaning for many centuries past. It will, indeed, be difficult to name a single advantage which accrued to the aborigines from the advent of this intensely selfish and tyrannical sect. The Indian Ryot (the Sudrā and Atisudrā) has been in fact a proverbial milch cow. He has passed from hand to hand. Those who successively held away over him cared only to fatten themselves on the sweat of his brow, without caring for his welfare or condition. It was sufficient for their purposes that they held him save in their clutches for squeezing out of him as much as they possibly could. The Brahmin had at last so contrived to entwine himself round the Sudrā in every large or small undertaking, in every domestic or public business, that the latter is by custom quite unable to transact any concern of moment without his aid.

This is even true at the present time. While the Sudrā on the other hand is so far reconciled to the Brahmin yoke, that like the American slave he would resist any attempt that may be made for his deliverance and fight even against his benefactor. Under the guise of religion the Brahmin has his finger in every thing, big or small, which the Sudrā undertakes. Go to his house, to his field or to the court to which business may invite him, the Brahmin is there under some specious pretext or other, trying to squeeze out of him as much as his cunning and wily brain can manage. The Brahmin despoils the Sudrā not only in his capacity of a priest, but does so in a variety of other ways. Having by his superior education and cunning monopolized all the higher places of emolument, the ingenuity of his ways is past finding out, as the reader will find on an attentive persual of this book. In the most

insignificant village as in the largest town, the Brahmin is the all in all; the be all and the end all of the Ryot. He is the master, the ruler. The Patel of a village, the headman, is in fact a non-entity. The Koolkurnee, the hereditary Brahmin village accountant, the notorious quarrel-monger, moulds the Patel according to his wishes. He is the temporal and spiritual adviser of the ryots, the Succour in his necessities and the general referee in all matters. In most instances he plans active mischief by advising opposite parties differently, so that he may feather his own nest well. If we go up higher, to the Court of a Mamlutdar, we find the same thing. The first anxiety of a Mamlutdar is to get round him, if not his own relatives, his castemen to fill the various offices under him. These actively foment quarrels and are the media of all corrupt practices prevailing generally roundabout these Courts. If a Sudrā or Atisudrā repairs to his Courts, the treatment which he receives is akin to what the meanest reptile gets. Instead of his case receiving a patient and careful hearing, a choice lot of abuse is showered on his devoted head, and his prayer is set aside on some pretext or other. Whereas if one of his own castemen were to repair to the Court on the self-same business, he is received with all courtesy, and there is hardly any time lost in getting the matter right. If we go up still higher to the Collector's and Revenue Commissioner's Courts and to the other Departments of the Public Service, the Engineering or Educational etc., the same system is carried out on a smaller or greater scale. The higher European officers generally view men and things through Brahmin spectacles, and hence the deplorable ignorance they often exhibit in forming a correct estimate of them. I have tried to place before my readers in the concluding portions of this book what expedients are employed by these Brahmin officials for fleecing the Coonbee in the various departments to which business or his necessities induce him to resort. Any one knowing intimately the workings of the different departments, and the secret springs which are

in motion, will unhesitatingly concur with me in saying that what I have described in the following pages is not one hundredth part of the rogueries that are generally practised on my poor, illiterate and ignorant Sudrā brethren. Though the Brahmin of the old Peshwa school is not quite the same as the Brahmin of the present day, though the march of Western ideas and civilization is undoubtedly telling on his superstition and bigotry, he has not as yet abandoned his time-cherished notions of superiority or the dishonesty of his ways. The Beef, the Mutton, the intoxicating beverages stronger and more fiery than the famed *Some-juice,* which their ancestors once relished, as the veriest dainties, are fast finding innumerable votaries among them.

The Brahmin of the present time finds to some extent, like Othello, that 'his occupation is gone'. But knowing full well this state of matters, is the Brahmin inclined to make atonement for him past selfishness? Perhaps, it would have been useless to repine over what has been suffered and what has passed away, had the present state been all that is desirable. We know perfectly well that the Brahmin will not descent from his self-raised high pedestal and meet his Coonbee and low-caste brethren on an equal footing without a struggle. Even the educated Brahmin who knows his exact position and how he has come by it, will not condescend to acknowledge the errors of his forefathers and willingly forego the long cherished false notions of his own superiority. At present, not one has had the moral courage to do what only duty demands, and as long as this state of matters continues, sect distrusting and degrading sect, the condition of the Sudrās will remain unaltered, and India will never advance in greatness of prosperity.

Perhaps a part of the blame in bringing matters to this crisis may be justly laid to the credit of the Government. Whatever may have been their motives in providing ampler funds and

greater facilities for higher education and neglecting that of the masses, it will be acknowledged by all that in justice to the latter this is not as it should be. It is an admitted fact that the greater portion of the revenues of the Indian Empire are derived from the Ryot's labour—from the sweat of his brow. The higher and richer classes contribute little or nothing to the state's exchequer. A well-informed English writer states that, " Out income is derived, not from surplus profits, but from capital; not from luxuries but from the poorest necessaries. It is the product of sin and tears ".

That Government should expend profusely a large portion of revenue thus raised, on the education of the higher classes, for it is these only who take advantage of it, is anything but just or equitable. Their object in patronising this virtual high-class education appears to be to prepare scholars " who, it is thought, would in time vend learning without money and without price ". " If we can inspire " say they " the love of knowledge in the minds of the superior classes, the result will be a higher standard of morals in the cases of the individuals, a large amount of affection for the British Government, and an unconquerable desire to spread among their own countrymen the intellectual blessings which they have received ".

Regarding these objects of government the writer, above alluded to, states that :

> " We have never heard of philosophy more benevolent and more Utopian. It is proposed by men who witness the wondrous changes brought about in the Western world, purely by the agency of popular knowledge, to redress the defects of the two hundred millions of India, by giving superior education to the superior classes and to them only." *** " We ask the friends of Indian Universities to favour us with a single example of the truth of their theory from the instances which have already fallen within the scope of their experience. They have educated many children of wealthy

men, and have been the means of advancing very materially the worldly prospects of some of their pupils; but what contribution have these made to the great work of regenerating their fellowmen/How have they begun to act upon the masses ? Have any of them formed classes at their own homes or elsewhere, for the instruction of their less fortunate or less wise countrymen ? Or have they kept their knowledge to themselves, as a personal gift, not to be soiled by contact with the ignorant vulgar ? Have they in any way shown themselves anxious to advance the general interests and repay philanthropy with patriotism ? Upon what grounds is it asserted that the best way to advance the moral and intellectual welfare of the people is to raise the standard of instruction among the higher classes/A glorious argument this for aristocracy, were it only tenable ! To show the growth of the national happiness, it would only be necessary to refer to the number of pupils at the colleges and the lists of academic degrees. Each Wrangler would be accounted a national benefactor, and the existence of Deans and Proctors would be associated, like the game laws and the ten-pound franchise, with the best interests of the Constitution."

Perhaps the most glaring tendency of the Government system of high class education has been the virtual monopoly of all the higher offices under them by the Brahmins. If the welfare of the Ryot is at heart, if it is the duty of Government to check a host of abuses, it behoves them to narrow this monopoly, day by day, so as to allow a sprinkling of the other castes get into the public service. Perhaps some might be inclined to say that it is not feasible in the present state of education. Our only reply is that if Government look a little less after higher education and more towards the education of the masses, the farmer being able to take care of itself, there would be no difficulty in training up a body of men every way qualified and perhaps far better in morals and manners.

My object in writing the present volume is not only to tell my Sudrā brethren how they have been duped by the Brahmins, but also to open the eyes of Government to that pernicious system of high-class education which has hitherto been so persistently followed by which statesmen like Sir George Campbell, the present Lieutenant-Governor of Bengal, with broad and universal sympathies, are finding to be highly mischievious and pernicious to the interests of Government. I sincerely hope that Government will ere long see the error of their ways, trust less to writers or men who look through high-class spectacles and take the glory into their own hands of emancipating my Sudrā brethren from the trammels of bondage which the Brahmins have woven round them like the coils of a serpent. It is no less the duty of such of my Sudrā brethren as have received any education to place before Government the true state of their fellowness and endeavour to the best of their power to emancipate themselves from Brahmin thraldom. Let there be schools for the Sudrās in every village; but away with all Brahmin school-masters! The Sudrās are the life and sinews of the country, and it is to them alone and not to the Brahmin that the Government must ever look to tide them over their difficulties, financial as well as political. If the hearts and minds of the Sudrās are made happy and contented, the British Government need have no fear for their loyalty in the future.

1st June 1873 JOTIRAO GOVINDRAO PHULE

प्रस्तावना

आज सैंकड़ों वर्ष हुए, ब्राह्मणोंका राज्य होने के बाद से समाज के शूद्र अतिशूद्रजन निरन्तर दुःख उठाते आ रहे हैं, अनेक प्रकार की यातनाओं एवं विपदाओं के बीच दिन बिता रहे हैं. ग्रंथ-रचना का उद्देश्य यही है कि इस स्थिति की ओर सबका ध्यान जावे, सब इस विषय में सोचें-विचारें और ऐसे उपाय करें कि जिनसे उन्हें आज के बाद से भविष्य में बाम्हन-पंडितों के अन्याय-अत्याचार से मुक्ति मिले. अनुमान होता है कि इस देश में ब्राह्मणों का राज्य आये कोई तीन हज़ार वर्षों से अधिक काल हुआ होगा. वे लोग विदेश से यहाँ आये, यहाँ आकर उन्होंने यहाँके मूल निवासियों पर विजय पायी, उन्हें अपना दास बनाया और उन्हें भाँति-भाँति के क्रूरतापूर्ण दंड दिये. फिर कुछ समय पश्चात् यह देखकर कि वे लोग इस घटनाको भूल चुके हैं, बाम्हनों ने यह बात पूर्णतः छिपा रखी कि मूल लोगों को जीतकर दास बनाया गया है. यहाँ के लोगोंपर अपना प्रभाव बना रहे, इस हेतु उन लोगों ने ऐसे नाना उपाय किये कि जिनसे उनका अपना स्वार्थ सिद्ध होवे. उनके ऐसे सभी उपाय सफल भी होते रहे. क्योंकि उस काल में वह लोग सत्ता की दृष्टि से तो पराधीन हो ही चुके थे तिस पर आगे बाम्हनों ने उन्हें ज्ञानहीन भी बना दिया. इस कारण बाम्हनों के दाँव-पेंच उनके ध्यान में कतई नहीं आ पाये. उन्होंने उन पर (मूल निवासियों पर) प्रभुता तो प्राप्त की ही, तथा इस हेतु से कि वे लोग सदा-सर्वदा उनके वश में ही रहें, केवल अपनी हितसाधना को ध्यान में रखकर उन्होंने बहुत से बनावटी ग्रंथ रच डाले. उन ग्रथों में यह लिख मारा कि ईश्वरने शूद्रों को जो उत्पन्न किया, उसका उद्देश्य ही है कि वे शूद्र सदा-सर्वदा बाम्हनों की सेवा में तत्पर रहें. तथा वही सब करें कि जिससे बाम्हनों को प्रसन्नता प्राप्त होवे. ऐसा करने से ही उन शूद्रजनों को भगवान् मिलेगा तथा उनका जन्म सार्थक हो जावेगा. अब यदि कोई इन ग्रंथों के विषय में किंचित् भी सोचे-विचारे, तो तुरंत ही २ समझ सकेगा कि वे ग्रंथ ईश्वर से प्राप्त हैं अथवा नहीं हैं. हमारा तो यह मत है कि ऐसे ग्रंथों से उस सर्व शक्तिमान् को समस्त जग के एवं. जगत् की समस्त वस्तुओं के निर्माता उस परमेश्वर को भी गौण बना दिया गया है. यह केवल हमारा ही मत हो, सो नहीं, आज हमारे जो सयाने-समझदार ब्राह्मण-बंधु हैं (वास्तव में उन्हें बंधु कहते भी हमें बहुत लज्जा आती है, क्योंकि, पहले एक समय में उन्होंने शूद्रों-अतिशूद्रों को बहुत दुःख दिये हैं

तथा वे शूद्रजन धर्म का एक नाता होने के कारण आज भी उनसे दुःख ही पा रहे हैं – और परपीडन या किसी को दुखाना बंधु का धर्म नहीं होता, तथापि हम सबका उत्पत्तिकर्ता एक होने के नाते हमें उन ब्राह्मणों को भी विवश होकर बंधु कहना पड रहा है, अस्तु. निश्चय है कि कुछ सयाने ब्राह्मण बंधु भी स्पष्ट रुप से हमारी बात का अवश्यमेव समर्थन करेंगे. किन्तु इसके लिए उन्हें केवल स्वहित का ही विचार न करके न्याय-अन्याय की दृष्टि से विचार करना होगा. यह तो ठीक है ही, इसके अतिरिक्त हमारे बुद्धिमान् विवेकशील अंगरेज, फ्रेंच, जर्मन, अमेरिकन और दूसरे जो विद्वान् जन हैं, वे भी यही मत प्रकट करेंगे कि वे ग्रंथ शुद्ध स्वार्थ से भरपूर हैं तथा लोगोंके हृदय पर ब्राह्मणों का प्रभाव जमा रहे, इस हेतु उनमें ब्राह्मणों को ही महत्त्वपूर्ण कहा गया है, यही नहीं, उन्हें ईश्वर से भी श्रेष्ठ बताया गया है. ऊपर जिन देशों के निवासियों की चर्चा की गयी है, उनमें से अंगरेजों ने तो कई स्थानों पर, इतिहास आदि पुस्तकों में स्पष्ट ही लिखा है कि ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ के लिए अन्य जनोंको अर्थात शूद्रादि अतिशूद्रजनों को अपना गुलाम बना लिया है. ऐसे ग्रंथों की रचना करके पंडितों-पुरोहितोंने ईश्वरके वैभव को कितना हीन बना दिया है – सोचिये तो. जिस ईश्वर ने शूद्रादि अतिशूद्रोंको तथा अन्य लोगोंको अपनी रची हुई सृष्टि की वस्तुओं का उपभोग करने की स्वतंत्रता दी हैं, बाम्हनोंने उसी ईश्वरके नाम से झूठे ग्रंथों की रचना करके उसके द्वारा सबके अधिकार मिटा दिये और अपने आप अग्रगण्य हो बैठे. इस पर हमारे कोई ब्राह्मण-महाशय शंका कर बैठेंगे कि यदि ये ग्रंथ झूठे हैं तो शूद्रादि अतिशूद्रों के पूर्वजों ने उन पर विश्वास क्यों कर किया और आज भी उनमें से बहुत से लोग विश्वास क्यों करते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि आज तो युग ऐसा प्रगतिशील है कि किसी पर किसीका अत्याचार नहीं, सब को अपने मन की बात खुले रुपसे लिखने की और कहने की अनुमति है – ऐसे युग में भी यदि किसी समझदार व्यक्ति के पास कोई झूठा जावे और वह किसी बड़े आसामी के नाम से एक झूठा पत्र उसे देवे, तो उस सयाने को भी कुछ काल तक क्यों न हो, उस पर भरोसा करना ही पडता है – कभी कभी वह सयाना भी धोखा खा जाता है. जब ऐसी दशा आज है तो उस काल में कि जब शूद्रादि अतिशूद्रजन पंडित-पुरोहितों के अत्याचार की चपेट में थे और उन्हें सर्वथा अज्ञानी बना दिया गया था, तब पंडित–पुरोहित अपने हित के लिए समर्थ के नाम से असत्य ग्रंथ तैयार करके और उन शूद्रादि अतिशूद्रों के मन की दिशा उन ग्रंथोंकी ओर मोड़ कर उन्हें ठगा किये और आज भी अनेक पंडित-पुरोहित कितनों ही को छलते जाते हैं.

यह व्यवहार ठीक वैसा ही है, जैसा कि ऊपर उदाहरण में कहा है. पंडितजी अपना पेट भरने के लिए अपने स्वार्थ भरे ग्रंथों में अज्ञानी शूद्रजनों को बार-बार उपदेश करते हैं – इस कारण उनके मन में पंडितों के प्रति पूज्य भावना उत्पन्न हो जाती है – परिणाम यह होता है कि, श्रद्धा – सम्मान के जो भाव केवल ईश्वर के प्रति ही उचित है – वह सम्मान और श्रद्धा ब्राह्मणों ने विवश बनाकर अपने प्रति अर्पित करा ली है – यह अन्याय कुछ छोटा या कम नहीं है. ब्राह्मणों को ईश्वर के सम्मुख इस अन्याय का उत्तर देना ही होगा. उनके उपदेशों की छाप बहुतसे अज्ञानी शूद्रजनों के मन में गहरी बैठ गयी है. इतनी गहरी कि जिन दुष्ट लोगों ने उन्हें अमरीका के गुलामों के समान गुलाम वनाया है, उन दुष्ट लोगों से मुक्त कराके जो लोग उन्हें स्वतंत्रता दिलाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, कुछ अज्ञानी शूद्रजन उन लोगों के विरुद्ध कमर कसकर उनसे ही लडने की ठान बैठे हैं. यह बहुत ही विचित्र अवस्था है कि जो उन पर उपकार कर रहे हैं, उन्हें ही यह लोग कहते हैं " हम पर उपकार ना करो. हम अब जैसे हैं, वैसे ही ठीक हैं. " ऐसा कहकर यह लोग उन उपकारकर्ताओं से ही झगड़ा करते हैं. अच्छा, यह बात भी नहीं कि उन्हें दासता से मुक्ति दिलाने वालों का उस मुक्ति कार्य से कोई स्वार्थ पूरा होता हो, उलटे उन्हें अपने सैंकडों लोगों का वलिदान देना पडता है, तथा बड़े-बड़े साहसपूर्ण कर्म करके अपने प्राणों को संकटों की आग में झोंकना पडता है. अब यदि हम इस विषय में तनिक भी सोचें-विचारें, तो तुरंत ही समझ आ जावेगा कि ऐसे परोपकारपूर्ण कार्य करने का उनका हेतु क्या है. स्वतंत्रता मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है. जब मनुष्य स्वतंत्र होता है, तो अपने मन में उठनेवाले विचारों को स्पष्टतापूर्वक कह तथा लिख सकता है. यदि वह स्वतंत्र न हो, तो वे विचार चाहे कितने ही जनहितकारी क्यों न हो, महत्वपूर्ण क्यों न हो, तथापि मनुष्य उन्हें दूसरों पर प्रकट नहीं कर सकता. और जब ऐसा होता है, तो वे विचार मन ही में विलीन हो जाते हैं. इसी प्रकार जब मनुष्य स्वतंत्र होता है, तो वह समस्त जगत् के नियामक तथा सर्वसाक्षी परमेश्वर द्वारा सर्वसामान्य जनोंको प्रदत्त अधिकारों को केवल अपना ही स्वार्थ साधन वाले और दूसरों के अधिकार दवा रखनेवाले ढोंगी लोगोंसे छीने बिना कदापि पीछे न हटेगा और जब हर किसी को उसका अधिकार मिल जायेगा, तभी उस उपकारी मनुष्य को वास्तव में सुख प्राप्त होगा. प्राणोंको दाँव पर लगानेवाला तथा विघ्नों-संकटों से परिपूरित यह कार्य करने का उनका हेतु क्या है? यही कि दुखी-पीडित जनों को स्वतंत्रता दिलायी जाय, उन्हें आततायी के अत्याचार से मुक्त करा उन्हें सुखी बनाया जाय.

अहाहा!! परोपकार का कितना प्रशंसनीय कार्य है! यह उनका उद्देश्य उच्च है, इसीलिए परमेश्वर उन्हें जहाँ वहाँ अधिकतः विजय दिलाता रहा है और हमारी भी उस ईश्वर के निकट यही प्रार्थना है कि वे सदा विजयी होवें. दक्षिण अमरीका और अफ्रीका, पृथ्वी के यह जो दो बड़े भाग हैं, इन प्रदेशों में सैंकड़ों वर्षों प्रथा चली आ रही थी कि दूसरे देशों से मनुष्य पकड़कर लाये जाते थे और उन्हें गुलाम बनाया जाता था. पूरे यूरोप के लिए तथा पृथ्वी की भूमि पर अन्य विकसित राष्ट्रों के लिए यह प्रथा अत्यन्त लज्जास्पद थी. ऐसी स्थिति को दूर करने के लिए अंगरेज, अमरीकन आदि उदारतावादी लोगों ने भीषण घमासान युद्ध किये, उन्होंने केवल अपनी हानि की ही नहीं, प्राणों की भी चिन्ता नहीं की. कितने ही काल से चली आ रही इस दुष्ट दासप्रथा को जड-मूल से उखाड़ फेंका – दुष्ट लोगों ने दासों को परमप्रिय माता-पिता से, बहन को भाई से, सन्तान को पिता से तथा प्यारों को आत्मीय जनोंसे दूर फेंक दिया था – दूर करके दोनों को इतना परम दुःख दिया था – कि वे दिन-दिन घुल-घुलकर क्षीण होते जा रहे थे, ऐसे प्रिय सम्बन्धी जनों से उन्होंने एक दूसरे का मेल करा दिया. अहा! अमरीकन आदि भद्रजनों ने यह कितना भद्र कार्य किया. उन गरीब और अनाथ गुलामों की दुर्दशा देख कर यदि उन भद्रजनों के चित्त में दया न उमड़ती, तो वे निर्धन बेचारे अपने प्रियजनों से मिलने की अधूरी इच्छा लिये ही संसार से कूच कर जाते. अच्छा, दासों को पकड़कर लाने वाले वे दुष्ट लोग उन्हें ठीक से भली प्रकार से रखते थे क्या? ना, ना, वे लोग दासों पर इतना जुल्म ढाते थे कि अत्याचार की वे कथाएँ सुनकर तो पाषाणहृदय व्यक्ति का भी कंठ भर आयेगा और आँखों से आँसू बह निकलेंगे. वे अत्याचारी मालिक गुलामों को मानों पशु मानते थे और उनके साथ हमेशा लात-घूँसों से ही काम लेते थे. कभी-कभी तो वे कड़ी धूप में उन्हें बैलों की जगह जोतकर अपने खेतों में हल चलवाते थे. यदि किसी ने कुछ चूँ-चपड की, तो उसकी देह पर उसे बैल समझ कर कोड़े बरसाते थे. यह भी हो, किन्तु वे मालिक उन गुलामों के खाने-पीने का कोई योग्य प्रबन्ध तो करते थे क्या? ना, ना, इसकी तो चर्चा करना भी व्यर्थ है. कभी एक जून खाना मिला, कभी ना मिला और जो मिला वह भी एकदम निकृष्ट कोटि का, वह भी इतना थोडासा कि बेचारों को सदा अधूरे पेट उठ जाना पडता. उन गुलामों से मालिक दिन भर इतना काम कराता कि छाती फटने को होवे और मुख से रक्त का वमन होवे – फिर रात्रि को बड़ी देर उन्हें गाय के गोठे जैसे घिनौने स्थानों पर सोने के लिए छोड़ते, थके-माँथे बेचारे दीन-हीन दास उसी ऊबड़ खाबड़ भूमि पर

अधमरे-से लेट तो जाते, किन्तु आँखों में नींद नहीं. नींद आये भी कहाँ से? पहली चिन्ता तो उसे यही कि जाने मालिक कब बुला बैठे. दूसरे यह कि पेट आधा भूखा, जिससे प्राण व्याकुल होकर बहुत क्लेश पाते. तीसरे यह कि सारे बदन पर चाबुकों की मार के घाव और शरीर रक्त से सना हुआ-बेचारा दास दाँये-बाँये करवटें ले रहा है. चौथे यह कि मन में विचार उठ रहा है "मेरे न होने से घर के लोग कितना दुःख पाते होंगे." सोच-सोचकर नेत्रों से अश्रु की बूँदें टप्-टप् टपकती थी. और ईश्वर से विनती करते थे "हे भगवान्, अब तो हम पर करुणा कर. मन में कुछ दया आने दे. इस दुःख से छुडा हमें, अब सहन नहीं होता. अब तो देह छूट जाये, तो ही भला." इसी चिन्ता में सारी रात बीत जाती. जो जो दुःख भोगे हैं उन्होंने, उनका पूरा वर्णन किया जा सकेगा, इस बारे में सन्देह ही है. भाषा में शोक रस के विषय में जितनें भी शब्द हैं, वे भी उन दुखों का वर्णन करने में अधूरे ही रहेंगे. कहने का तात्पर्य यह कि अमरीकन लोगों ने सैंकड़ों वर्षो से चली रही दुष्ट प्रथा को मिटाकर निर्धन अनाथ लोगों को उन अत्यन्त क्रूर लोगों के अत्याचारोंसे मुक्त कराया – उन्हें सर्वथा आनन्दित किया. इस घटना से अवश्य ही अन्य लोगों की अपेक्षा शूद्रादि अतिशूद्रों को अधिक सन्तोष प्राप्त होगा, क्योंकि दासता की दशा में किसी भी मनुष्य को कैसी यातना सहनी पडती है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव उन लोगों के अतिरिक्त या फिर उपर वर्णित गुलामों को छोड़ अन्य लोगों को कैसे हो पायेगा? अब उनमें तथा ऊपर कहे गये गुलामों में भेद इतना है कि ब्राह्मणोंने शूद्रादि अतिशूद्रों को जीतकर दास बनाया और दूसरों को दुष्ट स्वार्थीजनों ने बलात् धरकर दास बनाया. शेष सारी बातों मे दोनों एक-से हैं. उनकी दशा और गुलामों की दशा में रंच मात्र अन्तर नहीं है. अमरीका के उन गुलामों ने जितनी जैसी तकलीफें पायी हैं, वे ही सब तकलीफें शूद्रों –अतिशूद्रों को ब्राह्मणों से उठानी पड़ी हैं, अथवा यह कहा जाय कि उससे कहीं अधिक दुःख उठाने पड़े हैं, तो भी ठीक ही है. जो-जो साँसतें उन्हें झेलनी पड़ी हैं, केवल उनकी कहानी सुनकर ही किसी भी पाषाणहृदय मनुष्य का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा. नहीं, नहीं साक्षात् दुःख का सीना भी भीतर भरी व्याकुलता से अत्यंत उद्विग्न होगा और उसमें से दुःखाश्रुओं की ऐसी वेगवती धारा बह निकलेगी कि जिन ब्राह्मण-पूर्वज बंधुओं ने शूद्रादि अतिशूद्रों को गुलाम बनाया था, उन्हींके आज के वंशज जनों में जो कुछ कोमल हृदय रखते हैं और अपने पूर्वजोंके समान कठोर हृदय नहीं है, वे समझेंगे "यह दुःख के आँसुओं की धारा नहीं है – यह तो एक जलप्रलय का प्रवाह ही है." हमारी दयालु अंगरेज सरकार

को बिलकुल ज्ञात नहीं कि बीते युगों में शूद्रादि अतिशूद्रों को बाम्हनों से कैसे-कैसे अत्याचार सहने पड़े हैं. आज भी कैसे-कैसे अत्याचार सहन करने पड रहे हैं, यह भी सरकार को ज्ञात नहीं. वे यदि इस बारे में शोध करके, पूछताछ करके खोज निकालें, तो उन्हें पता लगेगा कि उन्होंने हिंदुस्तान के जितने भी इतिहास लिखे हैं, उनमें एक अति महत्वपूर्ण भाग छूट ही गया है. उन्हें शूद्रों के दुःखों का ज्ञान यदि एक बार हो जायेगा, तो वे अवश्य ही अति दुःखी होंगे. उन्हें अपने ग्रंथों में जब-जब किसी की दीन दशा की, दुष्टों द्वारा पीडित अति दुःखी जनों की दशा की उपमा देनी होगी, तो अवश्य ही वे शूद्रादि अतिशूद्रों की दशा की ही उपमा देंगे. इसके वर्णन के लिए शूद्रादि अतिशूद्र ही उचित उपमान ठहरेंगे. उनकी दशा सुनकर कविगण भी अति दुःखी होंगे, किन्तु साथ ही उन्हें थोड़ा सन्तोष भी होगा कि आज तक शोक रस का पूर्ण शब्द चित्र उपस्थित करने के लिए और श्रोताओं के मनों को प्रभावित करने के लिए उन्हें बहुत सोच-सोचकर वड़े प्रयत्नपूर्वक काल्पनिक उदाहरण सोचने-बनाने पड़ते थे. अब ऐसा होगा कि उन्हें उपमान खोजने के लिए उतने महान् यत्न न करने होंगे-शोकरस का साक्षात् मूर्तिमान् उदाहरण जो उन्हें मिल जायेगा. ऐसी अवस्था में आधुनिक काल के शूद्रादि अतिशूद्रों के अन्तःकरण में क्या विचार आते हो, यही तो कि जिनके वंश में हम उत्पन्न हुए हैं और जिनके और हमारे रक्त, हाड-मांस एक हैं, उन पूर्वजों द्वारा सहे गये दुःखों की गाथाएँ कितनी भयावह थीं. उन्हें सुनकर आजके शूद्रादि-अतिशूद्र बहुत दुःखी होते होंगे, भला इसमें आश्चर्य कैसा. एक समय ब्राह्मणों के राज्य में उनके ऊपर जो कुछ बीती है, उन घटनाओं की स्मृति आते ही हमारे मन में भय के कारण रोंगटे खड़े हो जाते हैं और मन में तुरंत ही विचार आते हैं " जिन घटनाओं की स्मृतिमात्र हमें इतनी दुःखदायिनी है, तब जिन्होंनें वह सब अत्याचार सहे होंगे उनके हृदय की क्या दशा हुई होगी, यह तो मात्र वे ही जानें. बाम्हन वंधुओं के ग्रंथों में ही इस विषय में एक स्पष्ट उदाहरण मिलता है. वह यह कि इस देश के मूल निवासी क्षत्रियों के साथ ब्राह्मणोंका मुख्य अधिकारी जो था परशुराम, उसने कितनी क्रूरता की है, यह तो इस ग्रंथ में वर्णित है ही. तथापि उसकी क्रूरता के विषय में यह ज्ञात हुआ है कि उसने अनेकानेक क्षत्रियों के प्राण छीने – उन क्षत्रियों की अनाथ विधवाओं के पास से " नन्हें-नन्हें चार-चार, पाँच-पाँच मास के अबोध निर्दोष शिशुओं को छीना, छीनने में मन में तनिक भी नहीं पसीजा. हा ! उस क्रूरकर्मा ने उन शिशुओं के प्राण भी हाय ! अति दुष्टता से हरण कर लिए. वह दुष्ट यही सब करके ठहरा हो, सो नहीं.

पति की मृत्यु से दीन बनी वे अबलाएँ अपने गर्भ में बढ रही सन्तान की रक्षा के लिए अति कष्टपूर्वक वनों-पठारों में छिपती-भागती फिरती थीं, तब उस दुष्ट ने शिकारी के समान उनका पीछा करके उन्हें पकड़ ला रखा. जब वे प्रसूत हुई और उसने सुना कि पुत्र जनमा है, तो झट आकर उसका वध किया. ऐसी वास्तविक घटना का वर्णन बाम्हनों के ही ग्रंथों में लिखा है. और फिर यह भी कि, क्योंकि बाम्हन क्षत्रियों के विरोधी थे, इस कारण उनके ग्रंथों से उस काल की सारी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो सकेगा, ऐसा तो हम स्वप्न में भी नहीं सोच सकते. इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणों ने उस घटना का बहुत सा वास्तविक भाग छिपा या छोड़ दिया होगा. क्योंकि कोई भी अपने किये दुष्कर्मों को अपने ही मुख से नहीं कहता. यह भी एक महान् आश्चर्य ही है कि उपरिलिखित यथार्थ घटना उन्होंने अपने ग्रंथों में लिख दी है. हमारा तो विचार यह है कि परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का पराभव किया – उनकी दुर्दशा की और उनकी अभागी नारियों के छोटे-छोटे बालकों को भी मार डाला – ब्राह्मणों की दृष्टि में यह बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया. उस पुरुषार्थ की जानकारी अन्य जनों को जनाने के लिए बाम्हनों ने अपने ग्रंथों में वह सब लिखा होगा. अथवा एक प्रसिद्ध कहावत है "हथेली फैलाने से सूर्य नहीं ढाँका जा सकता." इस कहावत के अनुसार यद्यपि वह वस्तुस्थिति अति लज्जास्पद थी, तथापि उसकी चर्चा बहुत फैल चुकी थी. इसलिए जितना कुछ छिपाते बना, छिपाया और जहाँ बस न चला वहाँ उतना लिखना ही पड़ा. अस्तु – ब्राह्मणों ने जितनी भी वस्तुस्थिति लिखी हैं, केवल उसका भी यदि किंचित् विचार किया जाय, तो मन में बहुत पीडा होगी-क्योंकि परशुराम ने जब गर्भवती स्त्रियों का पीछा किया होगा, तो उन्हें कितना कष्ट हुआ होगा. वैसे ही स्त्रीजनों के लिए भागना-दौड़ना महा दूभर काम है, तिस पर उन स्त्रियों में से कई उच्च एवं कुलीन वंश की स्त्रियाँ थीं – बेचारियों ने घर की देहली भी कभी लाँघी नहीं थी – जो कुछ आवश्यक वस्तुएँ थीं, सो सब सेवक ला देते थे, सदा पति का हित चाहकर उसके बल पर ही जिन्होंने सुख-चैन के दिन देखे थे, ऐसी नारियों पर जब पेट में गर्भ का बोझ उठाये सूरज की चिलचिलाती धूप में टेढे-मेढे, उजाड़ मार्गों से दौड़ने की बारी आयी होगी तो कहना होगा कि जानों उन पर भीषण संकट ही आन पड़ा होगा. उन्हें दौड़ने का अभ्यास तो था नहीं – सो पाँव मे पाँव अटकाकर धड़ाधड़ ठोकर खाकर, कभी पत्थरों पर तो कभी पहाड़ों के कगारों पर बेचारी गिरती होंगी, तो किसी के माथे पर, किसी की कुहनियों पर, किसी के घुटनों पर, तो किसी के टखनों पर

चोट लगी होगी – रक्त की धार बह निकली होगी. फिर यह जानकर कि "परशुराम पीछे से आता है" वे अबलाएँ घबराकर फिरसे दौड़ती होंगी – कोमल पाँवों में मार्ग के तीक्ष्ण काँटे चुभते होंगे, कटीली झाड़ियों में फँसकर उनके वस्त्र फटे होंगे और काँटों से बदन छलनी हुआ होगा, शरीर से रक्त बहा होगा. कड़ी धूप में दौड़ने से पाँव झुलसे होंगे, पाँवोंकी कमल के सम नीलवर्ण कान्ति अति आरक्त हो उठी होगी, मुख से झाग निकलता होगा और नेत्र अश्रुओं से भर आये होंगे. मुख को दो-दो दिनों तक पानी की बूंद न मिली होगी – तब व्याकुलता के मारे गर्भस्थ शिशु पेट में छटपटाता होगा. वे स्त्रियाँ सोंचती होंगी "अब यदि धरती फट जाये, तो बहुत भला, हम उसमें कूदकर इस दुष्ट से तो छूट पायेंगी." उन्होने नयनों मे जल भरकर क्या ईश्वर को पुकारा न होगा.? अवश्य कहा होगा "हे प्रभो, हम पर यह कैसी बेला आन पड़ी हैं. अरे. हम स्वयं बलहीन होने से अबला कहाती हैं. हमारा जो बल था, हमारा पति, उसे तो इस दुष्ट ने हर लिया. तू जानता है यह सब, फिर इतना निर्दयी होकर हमारा अन्त क्यो देख रहा है? अरे, जिसने हमारे पतियों के प्राण लेकर फिर हम अबलाओं पर भी शस्त्र उठाया है और ऐसे कर्म को बहुत पराक्रम मान रहा है – ऐसे दुष्ट के अपराधों को देखकर इतना सामर्थ्यशाली होता हुआ भी तू इस भाँति मुख मे अंगुली दबा स्तब्ध क्यों बैठा है?" इस प्रकार दीन वाणी से ईश्वर की गुहार लगाती थीं कि तभी दुष्ट परशुराम ने आकर उन्हें पकड़ न लिया होगा क्या? तब तो उनके दुःख का ठिकाना ही क्या? उनमें से अनेक स्त्रियों ने क्या रो-रोकर प्राण न त्यागे होंगे? और शेष स्त्रियोंने अत्यंत लीन-दीन होकर उस दुष्ट से प्रार्थना न की होगी? अवश्य कहा होगा "हे परशुराम जी, हमारी आपसे इतनी ही अन्तिम बिनती है कि हमारी कोख से उत्पन्न होने वाले अनाथ शिशु के प्राण न हरें. हम सब मिलकर आपके आगे आँचल फैला भिक्षा माँगती हैं – हमें इतना दान दीजिये. चाहे तो हमारे प्राण ले लीजिए, किन्तु हमारे बालकों के प्राणों पर कृपा करें. आपने हमारे पतियों को मार डाला, हम असमय ही विधवा हो गयीं. सब सुखों से वंचित हो गयीं. अब हमें भविष्य में पुत्रादि होने की भी आशा नहीं है. हमारे समस्त पंचप्राण हमसे उत्पन्न होने वाली सन्तान से जुड़े हुए हैं. हमारे अनेक दुःखों के बीच यही एक सुख शेष है. हमारे सुख के एकमात्र आधार यह हमारे बालक ही हैं. उनके भी प्राण हरकर हम अनाथ स्त्रियों को आप जीवन भर के लिए इस शोक सागर में क्यों ढकेलते हो? हमें इतनी भीख दे दीजिये, हम आपकी धर्म की बेटी हैं. कुछ भी कीजिए, मन में हमारी दया आने दीजिए." करुणा

भरी ऐसी वाणी सुनकर भी उस दुष्ट का अन्तःकरण क्या पसीजा? नहीं, बिलकुल नहीं. जैसे ही वह देखता कि स्त्री प्रसूत हुई, यह उसका बच्चा छीनने लगा. तब बच्चे की रक्षा के लिए वे नारियाँ बच्चे के ऊपर झुककर उसे अपने आँचल तले छिपा गरदन उँची उठाकर कहती होंगी "हे परशुराम जी, आप यदि इन शिशुओं के प्राण लेना ही चाहते हैं, तो पहले हमारा सिर काट लीजिए, फिर हमारे बाद उनका जो जी चाहे कीजिए कृपया हमारे सामने उनके प्राण ना लीजिए." किन्तु हा! उसने एक न सुनी. हरे-हरे! उसने उन माताओं से जब उनके बच्चे छीन लिये होंगे, उस काल माताओं को जो दुःख हुआ होगा, उसका वर्णन करते तो हमारी लेखनी हाथ से छूटकर गिर जाती है. अस्तु, उस नीच ने जब माता के सामने ही बालक को मार डाला तो कुछ माताओंने अपनी छाती पीट-पीटकर, बाल नोंच-खसोटकर और मिट्टी फाँक-फाँककर अपने प्राण त्यागे होंगे. कुछ ने पुत्र शोक के कारण देह त्यागा होगा, कुछ पागल हुई होंगी "हा पुत्र. हा पुत्र." कह कह भटकती फिरी होंगी. इस विषय की सारी वस्तुस्थिति हमे ब्राह्मणों द्वारा पुर्णतः ज्ञात हो जावेगी, ऐसी तो आशा करना भी व्यर्थ है. बाम्हनों के मुख्य नायक परशुराम ने उपयुक्त रीति से सैंकड़ों क्षत्रियों की हत्या करके उनकी नारियों तथा बालकोंकी दुर्दशा की. और इस पर यह भी बहुत आश्चर्यजनक बात है कि बाम्हनों ने आज के युग में शूद्रादि-अतिशूद्रों को यह पाठ सिखला और याद करा दिया है कि यह परशुराम ही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है, वही जगत् का उत्पत्तिकर्ता है. परशुराम के बाद भी ब्राह्मणों ने उन्हें कम यातनाएँ दी हों, सो बात नहीं – उलटे उन्होंने शूद्रादि-अतिशूद्रों को जितनी पीड़ा देना संभव था, वैसी पीड़ाएँ दी हैं. उन्होंने किस प्रकार क्रोध में आकर अनेक शूद्रों की बडी दुर्गत बनाकर उन्हें जीते जी भवन की नींव में गाड़ा है, इस बारे में इस ग्रंथ में आगे लिखा ही है. बाम्हनों ने उन्हे इतना तुच्छ माना था कि यदि कोई शूद्र नदी किनारे कपडे धोता हो और उसी समय यदि कोई बाम्हन वहाँ आ जाय, तो शूद्र को अपने सारे कपड़े समेटकर बहुत दूर चला जाना पड़ता था – इतना दूर कि जहाँ से पंडितजी के शरीर पर छींटे पडने की संभावना न हो, वहाँ जाकर उसे अपने कपड़े धोने पड़ते थे. यदि वहाँ से भी कहीं पंडितजी पर एकाध छींटा पड़ ही गया, अथवा झूठे ही आभास हुआ कि छींटा पड़ा है, तब तो वह ब्राह्मणदेवता अग्नि से भी लाल हो उठते – हाथ में पकड़ा हुआ लोटा शूद्र के सिर पर फेंक मारते. लोटे की चोट से बेचारे का सिर लहूलुहान हो जाता, वह मूर्छित हो भूमिरंजित पर धड़ाम से गिर जाता. फिर कुछ देर बाद होश आने पर रक्त अपने वस्त्र समेटकर बेचारा चुपचाप अपने

घर चला जाता. यदि सरकार के दरबार में शिकायत करावे, तो राज्य ब्राह्मणों का-उलटे वही दंड पावे. हरे! हरे! हे परमेश्वर, कैसा यह अन्याय! अस्तु – दुःख की कोई एक रामकहानी हो, तो सुनाई जाय. ऐसी या इससे भी बढकर भीषण यातनाएँ शूद्रादि-अतिशूद्रों को सहनी पडती थीं. ब्राह्मण-राज्य में उन्हें व्यवसाय के कारण अथवा अन्य किसी कारणवश कहीं आना-जाना पड़े, तो जानो महान् संकट आ पड़ा. उस में भी प्रातःकाल में तो आना-जाना महा कठिन कर्म था – क्योंकि प्रातःकाल में सब वस्तुओं की छाया दूर तक लंबी पडती है. यदि ऐसे काल कोई शूद्र मार्ग से जाता हो और देखे कि सामने से पंडित-महाशय पधार रहे हैं '' कहीं उनके पावन देह पर मेरी छाया न पड़ जावे, इस भय के मारे घड़ी दो घडी रुककर, चाहे रुकने से उस के काम मे देरी भले हो, रास्ते के एक ओर जाकर बैठ जाना पडता. पंडित जी के प्रस्थान के बाद उसे अपने काम के लिए आगे जाना पडता. यदि कहीं भूलचूक से उनकी परछाईं पंडितजी के शरीर से छू जाती, तो पंडितजी उसे मार मारकर अधमरा कर देता और फिर नदी तट जाकर स्नान करता. शूद्रों में से कई जनों को तो रास्ते पर थूकना भी कठिन था. यदि कहीं उसे ब्राह्मणों की वस्ती से गुजरना पड़ता, तो थूक जमा कर रखने के लिए उसे एक बर्तन साथ रखना पडता. यदि कहीं बाम्हन जी ने उसे भूमि पर थुकते देख लिया, तो समझ ले कि उसके दिन पूरे हुए. इस प्रकार की बहुत विपदाएँ भोग-भोगकर वे अत्यन्त त्रस्त हो गये. जैसे लंबे काल तक कारागृह में बन्द कोई कैदी अपने मित्रों से, अपने बाल-बच्चोंसे और अपने भाई-बंधुओं से मिलने की बडी उत्सुकता से प्रतीक्षा करता है अथवा स्वतंत्र होकर यथेच्छ घूमने फिरने की कामना मन में लेकर छूटने के दिन गिनता है – उसी प्रकार वे शूद्रादि-अतिशूद्र सोचते थे प्रतीक्षा करते थे कि " वह दिन कब आयेगा, जब हमें इस यातना से छुटकारा मिलेगा. '' तभी दैवयोग से ईश्वर को उन पर दया आई, इस देश में अंगरेजों का राज्य आया और उनके द्वारा वे शूद्रादि-अतिशूद्र बाम्हनों के दासत्व से शारिरिक दृष्टिसे मुक्त हुअे. वे अंगरेज सरकार का वहु बार आभार मानते हैं और उनके वे ऋणी हैं. वे अंगरेजों के उपकार कभी भी भुला नहीं सकते. बाम्हनों की कारा में सैंकडों वर्षों से बंदी बने हुए उन लोगों को अंगरेजों ने मुक्त कराके उनके बाल बच्चों को सुख के दिन दिखलाये. वे न होते, तो बाम्हनों ने शूद्रों को मिट्टी में मिला दिया होता. इस बात पर किसी के मन में ऐसी शंका आ सकती है कि आज समाज में ब्राह्मणों की अपेक्षा शूद्रादि-अतिशूद्र लोगों की संस्था दस गुनी अधिक है, फिर भला बाम्हनों ने उन्हें मिट्टी में क्योंकर मिला दिया होता?

इसका उत्तर यह कि एक बुद्धिमान् सयाना मनुष्य दस अज्ञानियों का मन अपनी ओर फेरकर उन्हें अपने वश में कर सकता है. और भी दूसरी बात यह कि यदि वे दस जने भी एक बुद्धि के हों तो वे उस अकेले सयाने की कुछ चलने नहीं देंगे. किन्तु वे दस लोग विविध पाँच-दस मतों के होने से सयाने को उन्हें ठगने-फँसाने में कुछ भी कठिनाई नहीं आती. इस भाँति बाम्हनों ने एक अति धूर्त चतुर विचार खोज निकाला कि जिससे शूद्रादि-अतिशूद्रों के विचार परस्पर मिलने न पावें. जैसे जैसे शूद्रों का समाज संख्या में बढने लगा, त्यों ही बाम्हनों को भय सताने लगा और उन्होंने सोचा " शूद्रादि-अतिशूद्रों में परस्पर टंटेबखेड़े और वैरभाव बना रहे, ऐसा कोई उपाय खोजना चाहिये. कुछ ऐसा उपाय हो तभी हमारे पाँव जमे रहेंगे. वे शूद्रादि सदा सर्वदा वंशपरंपरा से हमारे और हमारे वंशजों की गुलामी में पडे रहें और कुछ भी परिश्रम ना करके हम उनकी पसीने की कमाई के धन पर चैन से मौज मनाया करें. " इस विचार की पूर्ति के लिए उन्होंने जातिभेद का पाखंड खडा कर दिया. उस विषय में ऐसे ग्रंथ लिख मारे कि जिनसे उनका अपना हित बनता हो. और ऐसे ग्रंथों का ज्ञान उन अज्ञानी जनों के मन में भर दिया. उन लोगों में से जिन लोगों ने बाम्हनों के विरुद्ध घोर संघर्ष किया, बाम्हनों ने उनका एक अलग ही वर्ग बना दिया. और भी उनसे पूरी तरह बदला लेने की कुटिल इच्छा से एक और युक्ति की कि वे लोग अर्थात जिन्हें आज माली, कुनबी आदि कहते हैं, वे लोग तथा उनके वंशज भी आपस में एक दूसरे को छूना भी पाप समझें, ऐसा भेदभाव ब्राह्मणों ने उन लोगों के मनों में अंकित करा दिया. जब ऐसा हुआ तब यह हुआ कि उनका काम-धंदा बंद हो गया, खाने के भी लाले पडने लगे, तब विवश होकर उन्हें मरे ढोरोंका मांस खाना पडा. उनके इस कृत्य को देखकर आज के शूद्र कि जो आज बडे अभिमान से अपने को माली, कुनबी, सुनार, दरजी, लुहार, बढई आदि बडे-बडे नाम देते हैं. क्योंकि संयोगवश धंधा वह है, वे शूद्र ब्राह्मणों के कहने में आ गये. पूर्व काल में जो अपने एक ही घराने के थे जिनके पूर्वज साथ मिलकर स्वदेश के हेतु ब्राह्मणों के विरुद्ध डटकर लडे थे, वे माली, कुनबी आदि यह भेद जान ना पाये. परिणामस्वरुप उनकी ऐसी दुर्दशा हुई तथा वे अन्न के कण-कण को तरस गये. किन्तु बाम्हनों का यह भेद उनके ध्यान में नहीं आया और वे बाम्हनों के कहने में आकर अपने ही लोगों का द्वेष करना सीख गये. हरे! हरे! यह लोग ईश्वर के सम्मुख कितने अपराधी हैं! इन सबका इतना निकट का सम्बन्ध होते हुए भी वे अतिशूद्र जब किसी तीज-त्यौहार के दिन अनेक द्वार आकर

दूर ही खड़े होकर अन्न की भिक्षा मांगते हैं, तो वे लोग इन्हें दुतकारते हैं और कभी-कभी तो लाठी लेकर इन्हें मारने दौडते हैं. सो होवे. इस प्रकार ब्राह्मणों से जिन जिन्होंने जैसा जैसा बर्ताव किया ब्राह्मणोंने उनके साथ उस रीति से उनकी जातियाँ निश्चित कर दीं और उन्हें दंड दिया अथवा ऊपरी दिखावे का आश्रय दिया और इस प्रकार पूर्णतः अपने वश में कर रखा. जब से ब्राह्मणोंने शूद्रादि-अतिशूद्रों में जाति भेद निर्माण किया, तभी से सबके विचार और मत भिन्न-भिन्न हो गये. तब तो बाम्हनों को अपनी मनचाही व्यवस्था करने का अवसर मिल गया. इस बारे में एक प्रसिद्ध कहावत है "दो जनों का झगडा, तीसरे का लाभ," अर्थात् बाम्हनों ने शूद्रादि तथा अतिशूद्रों के बीच परस्पर वैमनस्य उत्पन्न कर दिया और उनके बल पर भोग-विलास का आनन्द लूट रहे हैं.

सारांश उपर कहा ही है. इस देशमें अंगरेजों के आने के परिणामस्वरुप शूद्रादि अतिशूद्र बाम्हनों की शारिरिक दासता से मुक्त हुए, यह तो सत्य है, किन्तु हमें कहते खेद होता है कि आज भी शूद्रादि-अतिशूद्रों को विद्या देकर शिक्षित बनाने की ओर हमारी दयालु सरकार का ध्यान नहीं है, इसलिए वे अभी भी अज्ञानी हैं. इसी कारण ब्राह्मणोंके बनाये बनावटी ग्रंथों के प्रभाव से बंधे होने के कारण आज भी उनके मानसिक दास बने हुए हैं. उनमें इतनी भी शक्ति नहीं रही है कि सरकार से शिकायत कर सकें. यह बाम्हन लोग उन सब शूद्रजनों को सारे सांसारिक और सरकारी कामों में कितना लूटते खसोटते हैं, हमारी सरकार का इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं है. इसलिए मैं अन्त में उस जगन्नियन्ता से प्रार्थना करता हूँ कि अंगरेज सरकार दया करके इस लूट-खसोट की ओर ठीक से ध्यान दे तथा उन्हें बाम्हनों की मानसिक दासता से मुक्त करे.

इस पुस्तक की रचना करते समय मेरे मित्र राजमान्य राजेश्री (रा. रा.) विनायकराव बापूजी भांडारकर तथा रा. रा. सा. राजन्नालिंगु ने मुझे प्रोत्साहित किया, अतः मैं उनके बहुशः आभार मानता हूँ.

जो. गो. (जोतीराव गोविंदराव)

अनुक्रमणिका

भाग 8

परशुराम, मातृवध, इक्कीस युद्ध-अभियान, दैत्य, खंडेराव ने रावण की शरण ली, नौखंडों की जाणाई, सती आसरा, महारों के गले की काली डोरी, अतिशूद्र, अन्त्यज, मांग, चांडाल, महार को जीवित ही नींव में गाडना, ब्राह्मणों में पुनर्विवाह का निषेध, क्षत्रिय-अर्भकों की हत्या, परभु, रामोशी, जिनगर आदि लोग, पराभूत होने के कारण परशुराम ने आत्महत्या की तथा चिरंजीव परशुराम को आमंत्रण, इत्यादि के विषय में ....

भाग 9

वेदमंत्र, जादू का प्रभाव, मूठ चलाना, मन्दिर का गर्भगृह गुँजाना, जप, चार वेद, ब्रह्म घोटाला, नारदशाही, नवीन ग्रंथ, शूद्रोंको विद्या देने का निषेध, भागवत तथा मनुसंहिता में असंगति इत्यादि के विषय में ....

भाग 10

दूसरा बलिराजा, ब्राह्मण धर्म की दुर्गति, शंकराचार्य का कृत्रिम, नास्तिक मत, निर्दयता, प्राकृत ग्रंथकार, कर्म तथा ज्ञानमार्ग, बाजीराव, मुसलमानों से द्वेष तथा अमरीकन एवं स्कॉच उपदेशकों ने ब्राह्मणोंका कृत्रिम दुर्ग ढहाया, इत्यादि के विषय में ....

भाग 11

पुराण बाँचना, विद्रोह आदि परिणाम, शूद्र राजा-रजवाडे, कुलकर्णी, सरस्वती की प्रार्थना, जप, अनुष्ठान, देवस्थान, दक्षिणा, बडे-बडे उपनामों की सभाएँ इत्यादि के विषय में ....

भाग 12

वतनदार ब्राह्मण कुलकर्णी, यूरोपियन लोगों की बस्ती की आवश्यकता, शिक्षा विभाग के मुख पर लगा काला दाग, यूरोपियन कर्मचारियों की अकल कैसे चकरा जाती है, इत्यादि के विषय में ....

भाग 13

मामलतदार, कलैक्टर, रेवेन्यू, जज और इंजीनियर विभाग में ब्राह्मण कर्मचारी इत्यादि विषय में ....

भाग 14

यूरोपियन कर्मचारियों की विवशता, खोतों का प्रभुत्व, पेंशन पाकर निश्चित बैठे यूरोपियन अधिकारियोंद्वारा गाँव-गाँव जाकर वहाँ की वस्तुस्थितिसे सरकार को अवगत कराना, धर्म तथा जाति का अभिमान इत्यादि के विषय में ....

भाग 15

सरकारी शिक्षाविभाग, म्यूनिसिपैलिटी, दक्षणाप्राईज कमेटी तथा ब्राह्मण-समाचारपत्र कर्ताओं की एकता, तथा शूद्रादि-अतिशूद्रोंके बच्चे विद्या प्राप्त न कर पायें, एतदर्थ बाम्हनोंका षडयंत्र इत्यादि के बारे में ....

भाग 16

ब्रह्मराक्षस की यातना का धिक्कार ....
पँवाडा ....
अभंग ....

(ब्राह्मणधर्म की आड़ में)

गुलामी

(सुसंस्कृत प्रगतिशील अंगरेजी राज्य में)

जोतीराव और धोंडीबा का संवाद

भाग पहला

ब्रह्मा, उत्पत्ति, सरस्वती तथा ईरानी अथवा आर्य लोगों के विषय में ....

धोंडीबा : यूरोप खंड की अंगरेज, फ्रेंच आदि दयालु सरकारों ने दास रखने की प्रथा को संगठित होकर निषिद्ध बना दिया, इससे क्या यह नहीं हुआ कि उन्होंने ब्रह्मदेव के बनाये नियम पर हरताल फेर दिया? कारण कि मनुसंहिता में लिखा है ब्रह्मदेव ने बाम्हनों को अपने मुख से उत्पन्न किया तथा केवल उनकी सेवा चाकरी करने के लिए ही शूद्रों को अपने पैरों से उत्पन्न किया.

जोतीराव : तेरा कहना है कि अंगरेज आदि सरकारोंने दास प्रथा बंद कराके ब्रह्माजी के नियम पर हरताल फेर दिया. तब इस भूमंडल में अंगरेज आदि जो नाना प्रकार के लोग रहते हैं, उन्हें ब्रह्माने अपने किस अवयव से उत्पन्न किया, इस बारे में मनुसंहिता में कोई विधान है क्या?

धोंडीबा : इस बारे में तो विद्वान् हो अथवा अविद्वान् हो, सभी ब्राह्मण यही उत्तर देते हैं कि अंगरेज आदि लोग अधम, दुराचारी आदि होने के कारण मनुसंहिता में उन लोगों के विषय में कुछ भी लिखा नहीं मिलता.

जोतीराव : तो क्या तू यह कहना चाहता है कि बाम्हनों में अधम, दुराचारी बिलकुल नहीं है?

धोंडीबा : खोजने पर तो यही दिखलाई देता है कि बाम्हनों में तो अधम तथा दुराचारियों की संख्या और भी अधिक है.

जोतीराव : इससे यही सिद्ध होता है कि मनु ने उत्पत्ति की जो पद्धति लिखी है, वह पूर्णतः मिथ्या है, क्यों कि वह सब लोगों के बारे में लागू नहीं होती.

जोतीराव : इसीलिए अंगरेज आदि लोगों के ज्ञानीजनोंने बाम्हनों के ग्रंथ-रचयिताओं की चतुराई को ताड़ लिया और किसी को भी दास बनाने की मनाही करा दी. ब्रह्मा यदि मनुष्यमात्र की उत्पत्ति का वास्तव में कारण होता, तो उन्होने दास बनाने की मनाही ना की होती. मनु ने चार वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन किया है – उसका यदि सृष्टि की व्यवस्था से मिलाप करके देखा जाय, तो हमें समझ आ जाता है कि सृष्टि-उत्पत्ति की वह व्यवस्था मिथ्या है.

धोंडिबा : वह कैसे?

जोतीराव : बाम्हन ब्रह्मा के मुख से जनमे, परन्तु सब बाम्हनों की मूल माता जो बाम्हनी रही होगी, वह ब्रह्मा के किस अवयव से उत्पन्न हुई, इस विषय में मनु ने कुछ भी नहीं लिखा. ऐसा क्यों?

धोंडीबा : क्यों कि उन विद्वान् ब्राह्मणों के मतानुसार ही वह अधम और दुराचारी होगी. इसलिए उसे तुम अभी तो म्लेच्छ मानकर उन्हींकी कोटि में रख दो.

जोतीराव : "हम भूदेव हैं, हम समस्त वर्णों में श्रेष्ठ हैं?" ऐसा बडे गर्व से सदाही कहने वाले बाम्हन – उनकी जन्मदात्री बाम्हनी ही होगी ना? और तू उसे म्लेच्छों की श्रेणी में बिठाये दे रहा है? उसे भला वहाँ के मद्य एवं गोमांस की गंध कैसे भायेगी? यह तो तुने बहूत अनुचित बात कही है रे.

धोंडीबा : आपने ही तो कई बार भरी सभा में कहा है कि बाम्हनों के मूल पूर्वज ऋषि-महर्षि थें, वे श्राद्ध के निमित्त गौ मारकर उस मांस से नाना प्रकार के पक्वान्न बनाकर खाते थे, और अब आप ही कहते हो कि उनकी मूल माता को दुर्गंध आयेगी. यह भला कैसे? आप तनिक धीर धरिये और अंगरेजी राज के बने रहने की कामना कीजिये, तो आपको दिखाई देगा कि आज के अधिकतर बाम्हन, अपने वस्त्रों और देह को भी न छूने देनेवाले पावन पंडित, रेसिडेंट, गवर्नर आदि अंगरेज अधिकारियों की कृपा पाने के लिए उनकी मेज़ पर पड़े हुए बचे-खुचे मांस के टुकडे भी खा जायेंगे – बैरे के हाथ एक टुकड़ा भी न लगने देंगे. क्या आप

नहीं जानते कि आज भी बहुत से महार जाति के बैरा लोग भीतर ही भीतर अंगरेजों के नाम से झींखने भुनभुनाने लगे है. मनु ने ही ब्राह्मणी की उत्पत्ति के बारे में कुछ नहीं लिखा, इसलिए इस दोष का मटका उसीके सिर पर फोड़िये. इस बारे में आप मुझे भला क्यों दोष लगाते हो कि "मैं अनुचित कहता हूँ" अच्छा – आगे कहिये.

जोतीराव : अच्छा, ठीक है. जैसा तू चाहे, वही सही. आगे चल. ब्राह्मण को जन्म देने वाले ब्रह्मा के मुख से जब प्रतिमास ऋतुस्त्राव होता होगा, तो यह तो बता कि वह चार दिन अस्पृश्य बनकर दूर बैठता था या लिंगायत स्त्री के समान केवल भस्म रमा पवित्र होकर घर के सारे काम काज करता था? इस बारे में मनु ने कुछ लिखा है क्या?

धोंडीबा : इस बारे में कुछ नहीं लिखा. ब्रह्मा तो ब्राह्मणों की उत्पत्ति का कारण है, तब लिंगायत स्त्री के समान आचरण उसे भला क्यों कर रुचेगा? आजकल के ब्राह्मण तो लिंगायत लोगोंसे घृणा करते हैं, क्योंकि वे लिंगायत सम्प्रदाय के लोग रजोधर्म के दिनों में अस्पृश्यता का पालन नहीं करते.

जोतीराव : इस बात से अव तू ही सोच देख कि ब्रह्मा के मुख, बाहु, जंघा और पैर, इन चार स्थानों की चार योनियों से रज बहता होगा, तो उसे कुल सोलह दिन अस्पृश्य बनकर दूर बैठना पडता होगा. जब ऐसा होगा, तब फिर उसके घर का कामकाज कौन करता होगा भला? मनु ने इस बारे में कुछ लिखा है क्या?

धोंडीबा : जी नहीं.

जोतीराव : अच्छा, उस गर्भ की जव ब्रह्मा के मुख में धारणा हुअी होगी, तब नौ मास तक वह कौन से स्थान में रहकर बढता गया? इस बारे में तो मनु ने कुछ कहा है?

धोंडीबा : नहीं कहा.

जोतीराव : अच्छा, उस जनमे ब्राह्मण वालक को ब्रह्माने अपने स्तन का दूध पिलाया अथवा बाहर का दूध पिलाकर छोटे से बड़ा किया, इस बारे में तो कुछ लिखा है क्या?

धोंडीबा : नहीं लिखा.

• लिंगायत = दक्षिण का एक शैव संप्रदाय।

जोतीराव : सावित्री ब्रह्मा की पत्नी है, फिर भी ब्रह्मा ने बच्चेका बोझ नौ मांस अपने मुख में थामने का, उसे जन्म देने का और उसका पालन-पोषण करने का झंझट अपने सिर क्यों ले लिया? यह भी एक बहुत आश्चर्य की बात है.

धोंडीबा : क्यों जी? उसके शेष तीन सिर तो इस झंझट से मुक्त थे या नहीं ? या फिर इस छिनाला छैले को भी सदा लड़कियों के बीच रमकर घरकुंडी का खेल खेलना ही पसंद था?

जोतीराव : अब उसे यदि छिनाला-व्याभिचारी कहें, तो उसने सरस्वती नामक अपनी कन्या से ही व्याभिचार किया, इसीलिए उसका उपनाम कन्यागामी (बेटीचोद) पड़ गया. उसके इस नीच कर्म का ही परिणाम है कि कोई भी उसकी पूजा नहीं करता.

धोंडीबा : ब्रह्मा के यदि सचमुच चार मुख थे, तो इसी न्याय से उसके आठ स्तन, चार नाभियाँ, चार मूत्रद्वार और चार ही मलद्वार होने चाहिएँ, किन्तु इस विषय में कहीं निश्चयात्मक उल्लेख़ नहीं मिलता. इसके आगे भी यदि इसी प्रकार विचार किया जाय तो यह भी प्रश्न उपस्थित होगा कि जब लक्ष्मी शेषशायी विष्णु की पत्नी थी, तब उस शेषशायी ने अपनी पत्नी को छोड़ अपनी नाभि से यह चार मुख वाला बालक कैसे और क्यों कर बनाया? इस बारे में अधिक विचार करते जाने पर तो शेषशायी की भी ब्रह्मा के समान ही दशा दिखाई देगी.

जोतीराव : वास्तव में विचार–विमर्श के पश्चात् यही निश्चित होता है कि ब्राह्मण समुद्र के दूसरी ओर जो ईरान नामक देश है, उस देशके निवासी थे. उन्हें पहले ईरानी अथवा आर्य कहते थे, ऐसा कई अंगरेज ग्रंथकर्ताओंने उन्हींके (आर्यों के) ग्रंथों से ही सिद्ध कर दिखाया है. पहले ये आर्य बड़ी बड़ी टोलियाँ बनाकर आये. उन्होंने इस देश पर कई आक्रमण किये और यहाँ के अधिकतर राजाओं के प्रदेशों पर बारंबार चढाई करके बहुत उपद्रव मचाया. आगे चलकर वामन के बाद ब्रह्मा नामक आर्योंका एक नायक हुआ. वह स्वभाव से बहुत हठी था. उसने अपने शासन काल में यहाँ के मूल निवासी हमारे पूर्वजों को रणभूमि में पराजित करके दास बना लिया. उसके अपने लोगों में तथा इन विजित दासों में सदा भेद बना रहे, इस दृष्टि से उसने कई प्रकार के नियम बना दिये. इन सारे कृत्यों का परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मा के निधन के बाद आर्योंके मूल नाम " आर्य " का स्वयमेव लोप हो गया और उन्हें " ब्राह्मण " कहा जाने लगा. बाद

में मनु जैसे अधिकारी हुए. निर्धारित नियमों की आगे चलकर कहीं कोई उपेक्षा अथवा तिरस्कार न कर दे, इस भय से उन्होंने ब्रह्मा के बारे में बहुविध नवीन कल्पित कथाएँ रच लीं तथा दासजनोंके मन पर छाप बिठला दी कि यह कपोलकल्पित कथाएँ ईश्वरेच्छा से निर्मित हुई हैं. और भी उनके मन पर प्रभाव जमाने के लिए शेषशायी के नाम से भी एक दूसरा मायावी कथाजाल फैलाया और अवसर पाकर कुछ काल बाद उन सब लेखों का एक ग्रंथ बना डाला. नारद जैसे लुगाईयों के बीच फिरनेवाले चतुर जीजा ने ताली करताल बजा-बजाकर उन ग्रंथों के बारे में शूद्र दासों को उपदेश सुनाया, इसलिए ब्रह्मा का महत्व सहज ही बढता गया. अब यदि हम ब्रह्मा के समान ही उस शेषशायी के बारे में भी चर्चा और प्रश्नोत्तर करने लगे, तो उससे लाभ तो रत्ती भर नही होगा – हम दोनोंका समय व्यर्थ नष्ट होगा. इन्होंने पहले ही विचारे को पीठ के बल चित लिटाकर उसकी नाभि से यह चार मुखवाला विचित्र बालक उत्पन्न किया है. इसलिए ऐसे चित पड़े असहाय पर खूँटा ठोकना कोई पुरुषार्थ का काम है, ऐसा मैं नहीं समझता.

□ □

भाग दूसरा

मत्स्य तथा शंखासुर के विषय में

धोंडीबा : वामन से पूर्व इस देश में ईरान से आर्यों की कितनी टोलियाँ आयी होंगी ?

जोतीराव : इस देश मे जलमार्ग सें आर्यों की कई टोलियाँ आयीं.

धोंडीबा : उनमें से जो पहली टोली आयी थी, यह समुद्र के रास्ते युद्ध नौकाओं पर चढ़कर आयी थी क्या ?

जोतीराव : उन दिनों युद्ध-पोत नहीं थे, इसलिए वह पहली टोली छोटी-छोटी नौकाओं में आयी थी. वे नौकाएँ मछली (मत्स्य) के आकार की थीं और तीव्र गति से चलती थीं, इसलिए उस दल के नायक का उपनाम मत्स्य पड़ गया होगा.

धोंडीबा : किन्तु ब्राह्मण इतिहासकारोंने तो भागवत पुराणादि ग्रंथों में लिखा है कि वह दल-नायक मत्स्य से उत्पन्न हुआ. यह कैसे भला ?

जोतीराव : अब तू ही सोच-विचार कर कि मनुष्य और मछली के अवयवों में आहार, निद्रा, मैथुन आदि प्रवृत्तियों में तथा जन्म की रीति में कितना अन्तर है. इसी प्रकार दोनोंकी बुद्धि में, हृदय और फुफ्फुसों में, आंतड़ियों में, गर्भाशय और प्रसूति-मार्ग में कितना अद्‌भुत अन्तर है. मनुष्य भूमि पर रहकर जीवन-निर्वाह करने वाला प्राणी है. वह पानी में गिरते ही ऊपर-नीचे गोते खाकर अन्त में डूब जाता है. और मछली सदा जल में रहकर जीवन बिताती है. पानी से बाहर निकालते ही वह तडप-तड्‌पकर मर जाती है . स्त्रियाँ सामान्यतः एक ही सन्तान को जन्म देती हैं, किन्तु मादा मछली पहले बहुत से अंडे देती है और कुछ दिनों बाद उन्हें फोड़कर उनमें से सब बच्चे बाहर निकालती है. अब यदि कहा जाय कि जिस अंडे में यह मत्स्य-शिशु होगा, उसे उसका माता-मछली ने पानी से बाहर लाकर फोड़ा और उसमें से उस माता ने शिशु को बाहर निकाला, तब भी प्रश्न है कि पानी से बाहर उस शिशुके प्राण कैसे बचे होंगे ? यदि कहा जाय कि संभवतः उसने अंडा पानी में ही फोड़कर शिशु को बाहर निकाला, तो

भला मनुष्य के समान शरीरधारी उस मत्स्य-शिशु के प्राण जल में रह क्यों कर बचे? यहाँ कोई ऐसा अनुमान कर सकता है कि कोई कुशल गोताखोर मनुष्य जल में डुबकी लगा उस विशेष अंडे को पहचानकर भूमि पर ले आया होगा. अच्छा, वही सही, किन्तु बाद में कौन वह चतुर पुरुष होगा कि जिसने मत्स्य-शिशु को अंडे से फोडकर बाहर निकाला होगा? क्योंकि आज यद्यपि युरोप और अमरीका में बहुत प्रगति हुई है और चिकित्सा शास्त्र में निपुण बड़े-बड़े प्रख्यात वैद्य हुए हैं, तथापि उनमें से भी कोई भी छाती ठोंककर नहीं कह सकता कि "हाँ, मैं मछली का अंडा फोड़कर उसमें से जीवित मत्स्य-शिशु निकाल दिखाता हूँ." अच्छा, मान लें कि वह अंडा पानी में है, तव कौन वह अमर मत्स्य होगा कि जिसने वह महत्वपूर्ण संदेश पानी से बाहर आकर गोताखोर को बताया होगा? और भला उस जलचर संदेशवाहक की बोली उस मानव गोताखोर ने क्योंकर समझी होगी? इस प्रकार अनेक शंकाएँ उठ खडी होती हैं, जिनका कोई उचित समाधान उस इतिहास के उल्लेखों से नहीं हो सकता. इस कारण अनुमान यही होता है कि अवश्य ही कुछ धूर्त लोगों ने अवसर पाकर यह दंतकथा सारे प्राचीन ग्रंथों में घुसेड दी होगी.

धोंडीबा : अच्छा. यह कहिये कि वह दलनायक मत्स्य अपने साथियों सहित कौन से तट पर आकर उतरा था?

जोतीराव : वह पश्चिमी समुद्रसे आकर एक बंदरगाह पर उतरा था.

धोंडीबा : मत्स्य ने बंदरगाह पर उतरते ही क्या किया?

जोतीराव : मत्स्य ने शंखासुर नामक क्षेत्रपति को मारकर उसका राज्य हथिया लिया. शंखासुर का वह राज्य आगे भी मत्स्य की मृत्यु के समय तक निर्विघ्न रुप से आर्यो के अधिकार में रहा. मत्स्य की मृत्यु के बाद शंखासुर के लोगों ने अपना राज्य लौटा लेने के लिए मत्स्य के दल पर प्रबल आक्रमण किया.

धोंडीबा : आगे उस आक्रमण का क्या परिणाम हुआ?

जोतीराव : इस आक्रमण में मत्स्य के दल की पराजय हुई और वह दल रणभूमि से भाग खड़ा हुआ. शंखासुर के लोगों ने उस दल का पीछा किया, तो वह दल एक पर्वत पर जाकर झाड़ियों में छिप गया. इसी समय ईरान से आर्यों की दूसरी बड़ी टोली आकर नाव के बंदरगाह पर आ उतरी. वह नाव छोटी नौका से कुछ बड़ी थी और पानी पर कछुए के समान धीरे-धीरे चलती थी, इस कारण उस टोली के नायक का उपनाम कच्छप पड् गया.

भाग तीसरा

कच्छप, भूदेव अथवा भूपति, क्षत्रिय, द्विज तथा कश्यप राजा के विषय में......

धोंडीबा : मछली और कछुए की सारी बातों की विवेचना करने पर दिखलाई देता है कि दोनों में कुछ-कुछ अन्तर अवश्य है, किन्तु अन्य बातों में जैसे जल में रहना, अंडे देना और उन्हें फोड़ना, आदि में वे एक-दूसरे से समानता रखते हैं. इसीलिए भागवत आदि पुराण लिखनेवाले पुराणकारों ने लिख रखा है कि कच्छप कछुए से उत्पन्न हुआ. इस विषय में यदि आगे विचार करने लगें, तो मुझे निश्चय है कि परिणाम वही होगा, जो मत्स्य के विषय में हुआ और इस प्रकार हम दोनों का समय व्यर्थ होगा इसलिए मैं आपसे आगे पूछता हूँ कि कच्छप ने बंदरगाह पर उतरकर क्या किया?

जोतीराव : उसने पहले यह किया कि जिस पर्वत पर मत्स्य की टोली घेरे में घिरी पड़ी थी, कच्छप ने बंदरगाह से लेकर उस पर्वत के इस ओर तक और उस क्षेत्र के मूल निवासी लोगों को तथा घेरा डालने वाले लोगोंसहित मार भगाया. अपने सारे लोगों को छुडवाकर वह उस क्षेत्र का भूदेव अथवा भूपति बन बैठा और मस्त होकर डकराने लगा.

धोंडीबा : अच्छा, कच्छप ने उस क्षेत्र से जिन क्षत्रियों को मार भगाया था, वे कहाँ गये?

जोतीराव : उन लोगों ने जब सुना कि समुद्र से दूसरी ईरानी अथवा आर्य लोगों की टोली आयी है, तो वे घबरा उठे. घबराकर "द्विज आये, द्विज आये" चिल्लाते हुए उस पर्वत की पिछाडी जाकर कश्यप नामक क्षेत्रपति के पीछे हो लिए. इसके बाद कच्छ ने अपने साथ थोड़ी सेना ली और वह पर्वत के परली ओर जाकर नीचे उतरा. वह उस पर्वत को पीठ पर लेकर अर्थात पीठ पीछे छोडकर कश्यप के राज्य में घुसा और वहाँ के क्षत्रियों को त्रस्त करने लगा. ज्यों-ज्यों ईरान से सहायता अधिक आने लगी, वह उन्हें अधिकाधिक पीडा देने लगा. आगे चलकर यद्यपि कश्यप ने उस पर्वत को कच्छप से वापस पाने के लिए बहुत यत्न किये,

तथापि कच्छप ने वह पीठ पीछे रखा हुआ या पृष्ठ में साक्षात् बल रूप वह पर्वत उस क्षेत्रपति के हाथ नहीं लगने दिया. वह रणभूमि में डटा रहा और एक पग भी पीछे नहीं हटा.

□ □

भाग चौथा

वराह तथा हिरण्याक्ष के विषय में............

धोंडीबा : कच्छप की मृत्यु के बाद द्विजों का नेता कौन बना?

जोतीराव : उसका नाम था वराह.

धोंडीबा : वराह शूकर से उत्पन्न हुआ था, ऐसा भागवत आदि पुराणकर्ताओं ने लिख रखा है. इस बारे में आपका क्या मत है?

जोतीराव : वास्तव में सोच-विचार के पश्चात् यही निश्चित होता है कि मनुष्य और शूकर में बहुत तथा अद्भुत भेद है. इस भेद को तू निश्चयपूर्वक जान सके, इसलिए इस विषय के एक उदाहरण के बारे में हम सोच समझ लें, तो ही पर्याप्त होगा. यह सोचो कि मनुष्य और शूकर सन्तान को जन्म देने के बाद उसके साथ कैसा आचरण करते हैं. मानवजाति की स्त्री सन्तान को जन्म देने के बाद उसे किंचित् भी दुःख कष्ट होने नहीं देती और बड़ी सावधानी से उसका पालन-पोषण करती है, परन्तु शूकरी कुतिया के समान अपने पहले बच्चे को खा डालती है, बाद में शेष बच्चों को जनती है. इस से यह सिद्ध होता है कि वराह की शूकरी माता ने पहले अपने प्रथम शूकर बच्चे को खा डाला होगा और बाद में इस वराह को जन्म दिया होगा. परन्तु भागवत पुराण आदि पुराणकारों के कथनानुसार वराह तो आदिनारायण का अवतार था–तब कह तो कि उसके सर्वसाक्षित्व तथा समदृष्टि को दोष लगता है या नहीं? अवश्य लगता है, क्योंकि वराह आदिनारायण का अवतार था और जब उसकी जननी बडे भाई को मारकर खा रही थी, तो उसे इस विषय के बारे में पहले ही कुछ न कुछ रोकथाम करनी चाहिये थी या नहीं? अरे अरे!! पद्मा शूकरी वराह आदिनारायण की जननी थी ना? फिर उसने "बालहत्त्या" क्योंकर की? वास्तव मे "बालहत्या" शब्द का अर्थ होता है कि "बालक का वध करना" चाहे वह किसी का भी बालक क्यों न हो. किन्तु इसने तो अपने ही पेट से जनमे बच्चे को मारकर खा डाला. ऐसे घोर अन्याय का वर्णन करने के लिए तो शब्दकोश में भी शब्द नहीं मिलेंगे. यदि इसे डायन कहें, तो भी

उचित नहीं, क्यों कि एक प्रसिद्ध कहावत है "डायन भी अपने बच्चे को नहीं खाती" फिर बाद में उस वराह की माता पद्मा ने ऐसे अघोरी कर्म के क्षालनार्थ और नरकयातना से बचने के लिए कोई प्रायश्चित्त किया अथवा नहीं, ऐसा कहीं लिखा नहीं मिलता, इसलिए जी में बहुत खेद होता है.

धोंडीबा : वराह की माता शूकरी का नाम यदि पद्मा था, तो उससे यह अर्थ निकलता है कि उसके शूकर पति का भी कुछ नाम होना ही चाहिये. है ना?

जोतीराव : हाँ, पद्मा शूकरी के पति का नाम था – ब्रह्मा.

धोंडीबा : इससे तो यही प्रतीत होता है कि पहले काल में पशु भी अपने बीच ब्रह्मा, नारद और मनु जैसे नाम रखते थे – किन्तु भला वे नाम इस गपोडिया ग्रंथकार को कैसे ज्ञात हुए होंगे? दूसरी बात यह कि इसमें तो सन्देह ही नहीं कि पद्मा शूकरीने वराह को बचपन में अपने स्तनों से दूध पिलाया होगा, किन्तु बाद में कुछ बड़ा होने पर अपने पति ब्रह्मासहित वराह को भी साथ लेकर वह गली-गाँव की गिरी-फटी दीवारों-दरारों में उगे हुए अति सुकोमल फूलोंवाली झाड़ीयों का चारा चरने की आदत पद्मा शूकरीने उस वराह को लगा दी अथवा नहीं, यह तो वह वराह आदिनारायण ही जाने. इस बारे में तथा अन्य भी कई बातों का उल्लेख उनके ग्रंथोंमें नहीं मिलता, इस कारण मुझे लगता है यह जो ग्रंथों मे लिखा है कि वराह शूकरी से उत्पन्न हुआ, वह सब झूठ है. ऐसी उलटी बातें लिखते हुए उस ग्रंथकार को लज्जा कैसे नहीं आयी?

जोतीराव : वाह रे वाह ! और तुम जैसे लोग ही कि उन ग्रंथों पर विश्वास करके उन ग्रंथकारों के बालबच्चों के पैर धोकर पिया करते हो. तब फिर लज्जा तुमने बेच खायी या उन्होंने?

धोंडीबा : अच्छा, जाने दीजिए. यह तो कहिये कि उस नायक का नाम वराह कैसे पड़ा होगा?

जोतीराव : संभवतः उसका स्वभाव तथा आचरण बडा घिनौना रहा होगा. और वह जिस ओर जाता होगा, शूकर की भाँति झपटकर तेजी से बढ़ता होगा और विजय पाता होगा. इस कारण से महाप्रतापी हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के राज्यों के क्षत्रियों ने उसे धिक्कारने के विचार से उसका नाम शूकर (वराह) रख दिया होगा. तब तो वह बहुत बौखलाया होगा. इस तिरस्कार से चिढ़कर उसने उन क्षत्रियों के प्रदेशों में बार बार आक्रमण

किये. उन क्षेत्रवासी जनों को अत्यन्त पीडा देकर अन्त में उसने एक युद्ध में हिरण्याक्ष को मार डाला. इस घटना से सारी पृथ्वी (हिन्दुस्तान) में समस्त क्षेत्रपतियों पर धाक बैठ गयी और वे सब कुछ हड़बड़ा से गये. इसी समय वराह का देहान्त हो गया.

□ □

भाग पाँचवाँ

नारसिंह, हिरण्यकश्यपु, प्रह्लाद, विप्र, विरोचन इत्यादि के विषयमें ....

धोंडीबा : वराह की मृत्यु के बाद द्विज लोगों का नेता कौन बना?

जोतीराव : नृसिंह बना.

धोंडीबा : नृसिंह का स्वभाव कैसा था?

जोतीराव : नृसिंह स्वभाव से लोभी, ढोंगी, विश्वासघाती, कपटी, घातक, निर्दय और क्रूर था. वह शरीर से अति सुदृढ और बलवान् था.

धोंडीबा : उसने क्या क्या किया?

जोतीराव : उसने पहले हिरण्यकश्यपु के वध की योजना बनाना आरम्भ किया. उसे निश्चय था कि हिरण्यकश्यपु को मारे बिना उसका राज्य हथिया लेना संभव नहीं है. अपने इस कुटिल हेतु की पूर्ति के लिए चतुराई की. एक द्विज अध्यापक को गुप्त रीति से बहुत प्रयत्न पूर्वक हिरण्यकश्यपु के महल में भेजा. उस द्विज-अध्यापक ने हिरण्यकश्यपु के प्रह्लाद नामक पुत्र के अविकसित बालमन पर अपने धर्म के मूलतत्वों का प्रभाव जमा दिया. इस से यह हुआ कि प्रह्लाद ने अपने हरहर नामक कुलदेवता की पूजा करना बन्द कर दिया. पश्चात् हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद के भटके हुए मन को पुनः अपने कुलस्वामी की पूजा की ओर फेरने के लिए नाना उपाय किये, तथापि नृसिंह भीतर ही भीतर प्रह्लाद की सहायता कर रहा था, इस कारण हिरण्यकश्यपु के सारे यत्न व्यर्थ सिद्ध हुए. अन्त में नृसिंह ने उस अज्ञानी बालक को अनेक झूठे भुलावे दे देकर उसका मन भ्रष्ठ कर दिया. इतना कि प्रल्हाद के मन में अपने पिता की हत्या करने का विचार आने लगा. मन में विचार तो आया, किन्तु ऐसा घृणित कर्म करने का उसे साहस नहीं होता था. इसलिए नृसिंह ने अवसर पाकर ऐसा किया कि ताज़िये के शेरों जैसा स्वाँग भरा-सारी देह पर रंग लगा, मुँह में लंबे-लंबे नकली दाँत लगाकर लंबे-लंबे बालों वाली दाढ़ी बढ़ा ली और वह एक प्रकार का सिंह ही बन गया. अपना यह कृत्रिम रुप छिपाने के लिए नृसिंह

ने कलाबत्तू वाली महँगी साडी पहन ली और एक कुलीन स्त्री की भाँति मुख पर ढेर लंबा घूँघट खींचकर ठुमकते-मटकते हुए नृसिंह उस बालक की सहायता से एक दिन उसके पिता के विशाल भवन में जा पहुँचा, जिसमें बड़े-उँचे खंभों की भरमार थी. उन खंभों के बीच वह जा छिपा. इसके कुछ देर बाद हिरण्यकश्यपु दिन भर राज-काज करके शाम को थका-माँदा अपने भवन में लौटा. वहाँ निश्‍चिंत होकर एकान्त में चैन से आराम करने के लिए पलंग पर लेटा ही था कि नरसिंह ने झट आँचल को कमर में लपेटा, खंभों के पीछे से बाहर निकला और हिरण्यकश्यपुके शरीर को दबाकर बैठ गया. फिर उसने हाथ में पहने बघनखे से हिरण्यकश्यपु का पेट फाडकर उसे मार डाला और सारे द्विजों सहित दिन-रात भागता ही चला गया और अपने प्रदेश में पहुँच गया. उधर क्षत्रियों को पता चला कि नृसिंह ने प्रह्लाद को मूर्ख बनाकर ऐसा घिनौना कर्म किया है, तो उन्होंने आर्यों को द्विज कहना एकदम छोड दिया और वे उन्हें विप्रिय कहने लगे. आगे इसी विप्रिय शब्द से बिगड़कर उनका नाम विप्र पड गया होगा. और भी क्षत्रियोंने नृसिंह को नारसिंह अर्थात् " सिंह की पत्नी " यह निन्दनीय नाम दिया. अन्त में हिरण्यकश्यपु के कई पुत्रोंने कई बार प्रयत्न किये कि नारसिंह को बंदी बनाकर उसे यथायोग्य दंड दिया जाय, परन्तु नारसिंह ने तो हिरण्यकश्यपु का राज्य, जीतने की आशा कतई छोड दी थी. सो वह जैसे-तैसे बचता-बचाता रहा और बाद में आगे और कोई उपद्रव किये बिना मृत्यु को प्राप्त हुआ.

धोंडीबा : इससे यही सिद्ध होता है कि संभवतः विप्र इतिहासकार इस घटना से घबरा गये होंगे. नारसिंह के ऐसे घृणित कर्म के कारण आगे चलकर उसकी कोई निन्दा या अपवाद ना करे, इस भय के कारण उन्होंने कुछ काल बाद अवतार पाकर ऐसी झूठी गप्पें बनाकर इतिहास में घुसेड़ दीं कि " नारसिंह खँभे से प्रकट हुआ. " आदि 2.

जोतीराव : हाँ, इसमें सन्देह ही क्या? कारण यह कि यदि वह खँभे से जन्मा था, तो किसीने तो उसकी नाल काटी होगी और फिर चिंदी दूध में भिगोकर उसे दूध पिलाया होगा ना. अन्यथा कैसे बचा होगा वह? बाद में भी किसी दाई ने या और किसी ने ऊपर से दूध पिलाया होगा, तभी तो वह छोटे से बडा हुआ होगा ना? यदि कहने भर को ऐसा मान भी लिया जाय, तो भी जो सृष्टि का नियम चला आता है, उसका भंग होता है. इन गप्पाचार्य विप्र ग्रंथकारों ने नारसिंह को लकड़ी के खंभे से जनम

देकर जनमते ही एकदम से दाढी-मूँछोंवाला ऐसा बलवान् ठेंठ-बुद्धू बना डाला कि उसने तुरंत ही हिरण्यकश्यपु को जाँघो पर रखकर पेट फाडकर उसे मार डाला. अरे अरे ! ! जो पिता अपने विश्वास के अनुसार पितृधर्म का ध्यान धरकर केवल शुद्ध ममता के मारे अपने पुत्र का मन सच्चे धर्म के प्रति आकर्षित करने के लिए प्रयत्नशील था, उसे सर्वसाक्षी आदिनारायण के उस अवतार ने इस प्रकार देहान्त का दंड दिया. क्या यह उचित था? ऐसा दंड तो कोई अज्ञानी मनुष्य का अवतार भी नहीं देगा. वह नारसिंह आदिनारायण का अवतार था, सो उसने जब हिरण्यकश्यपु को दर्शन दिया था, तब कहा होता "मैं आदिनारायण का अवतार हूँ" और ऐसा कहकर उसने पिता-पुत्र में मेल कराया होता. सो तो रहा दूर, उसने हिरण्यकश्यपु की इतनी निर्दयता से हत्या की ! कितने आश्चर्य सी बात है यह ! यदि वह हिरण्यकश्यपु को उपदेश करके संशय का निवारण करके निश्चय भाव नहीं उत्पन्न कर सका, तो वह सबका बुद्धिदाता क्योंकर हुआ? इससे तो यही सिद्ध होता है कि उस नारसिंह में पुणे नगर की गोबर इकठ्ठा करने वाली रांड जितनी भी बुद्धि नहीं थी – कि जिसने-देखो अपने को दूसरा बृहस्पति कहलाने वाले पुणे के एक विद्वान् को केवल अपनी मीठी लुभावनी बोली से मुग्ध करके दास बना लिया. आज हिन्दुस्तान में अमरीकन और युरोपियन मिशनरियों ने हमारे कितने ही युवकों को ईसाई धर्म में दीक्षित कर लिया है, परन्तु उन्होंने उन युवकों में से किसी के भी पिता की हत्या नहीं की. यह कितने आश्चर्य की बात है !

धोंडीबा : नारसिंह का इस प्रकार अपमान होने के बाद विप्रों ने प्रह्लाद का राज्य छीनने का कुछ यत्न किया अथवा नहीं?

जोतीराव : विप्रों ने प्रह्लाद का राज्य हथियाने के लिए चोरी छिपे कई प्रयत्न किये, किन्तु सारे यत्न व्यर्थ हुए. क्योंकि आगे चलकर प्रह्लाद की आँखें खुल गयीं और उसने विप्रों के छल कपट को ताड़ लिया. इस प्रकार प्रह्लाद ने विप्रगणों का थोडा भी भरोसा नहीं किया. सबके साथ ऊपरी स्नेह जतलाकर अपने राज्य का उसने समुचित प्रबन्ध किया और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुआ. इसी प्रकार उसके बाद उसके पुत्र विरोचन ने उस राज्य का पालन किया और राज्य को सुदृढ बनाकर वह भी परलोक सिधारा. विरोचन का पुत्र बलि बहुत पराक्रमी निकला. उसने पहले अपने आश्रय में बसने वाले छोटे छोटे क्षेत्रपतियों को दुष्टों तथा उपद्रवियोंके कष्ट से उबारा और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लिया. इसके बाद उसने धीरे-धीरे

अपने राज्य का विस्तार करना आरंभ किया. उस काल विप्रों का अधिपति था वामन. उससे बलि की बढती हुई सत्ता सहन न हो पायी. इसलिए उसने चोरी-छिपे बड़ी-सी सेना एकत्रित कर ली, ताकि एकदम लड़ाई करके बलि का राज्य हथियाया जा सके. बड़ी सेना लेकर वह अचानक ही बलि के राज्य की सीमा पर आ खड़ा हुआ. वामन अत्यंत लोभी, साहसी तथा ईर्ष्यालु था.

□ □

भाग छठा

बलिराजा, जोतीबा, खंडोबा, मराठे, खंडोबा महासुभा, नौ खंडों का न्यायी, भैरोबा, भराडी, सात आश्रित, तल उठाना, आदित्यवार को पवित्र मानना, वामन, पाक्षिक विधि का पालन, विंध्यावली, घट स्थापना, बलिराजा की मृत्यु, सती होना, आराधी लोग, सीमोल्लंघन, चावलों का बलि राजा, दूसरे बलिराजा के आगमन की भविष्यवाणी, बाणासुर, कोजागिरी (शरद पूर्णिमा) वामन की मृत्यु, उपाध्ये, होली, वीर का धरना, बलिप्रतिपदा, भैय्यादूज इत्यादि के विषय में ....

धोंडीबा : अच्छा कहिये कि बलिराजा ने क्या किया?

जोतीराव : बलिराजा ने अपने राज्य के सारे सरदारों की ओर तथा उनके आश्रय में रहने वाले क्षेत्रपतियों की ओर तुरंत सांडनी-सवार रवाना किये और सबको कठोर आदेश दिया कि वे कोई भी कारण या बहाना न बनावें और अपनी सारी सेना लेकर सहायता के लिए आ जावें.

धोंडीबा : इस देश में राजा बलि के आधिपत्य में कितना विशाल प्रदेश था?

जोतीराव : इस देश में बलिराजा के अधिकार में कई स्थानों पर कई प्रदेश थे. इसके अतिरिक्त सिंहलद्वीप तथा उसके आसपास के अनेक द्वीप भी उसके अधिकार में थे, ऐसा अनुमान है. क्योंकि वहाँ बलि नामक एक द्वीप आज भी है. इस देश के दक्षिणी भाग में कोल्हापुर के पश्चिम ओर वाले कोंकण तथा मावल प्रदेश के कई क्षेत्र बलिराजा के आधिपत्य में थे. उस क्षेत्र के मुख्याधिकारी का नाम था–जोतीबा. उसका निवासस्थान कोल्हापुर के उत्तर की ओर बसे रत्नागिरि नामक पर्वत पर था. इसी प्रकार दक्षिण में बलि के राज्य का दूसरा क्षेत्र था, जिसे महाराष्ट्र कहते थे तथा उस क्षेत्र के निवासी जनों को महाराष्ट्री कहते थे. इसी शब्द का अपभ्रंशरूप मराठे हुआ. यह महाराष्ट्र क्षेत्र बहुत विशाल था, इसलिए बलिराजा ने उस क्षेत्र के नौ खंड किये थे. इस आधार पर उस प्रत्येक खंड के अधिकारी का नाम खंडोबा पड़ा. प्रत्येक खंडोबा की योग्यता के अनुसार उनके एक अथवा दो मंत्री होते थे. इसी प्रकार हरेक खंडोबा के आश्रय में बहुत

से मल्ल होते थे, इसलिए उसे मलूखान कहते थे. इन खंडोवा में से एक था जेजोरी क्षेत्र का खंडोबा, वह अपने आस-पास के क्षेत्रपतियों के आश्रित मल्लों के ऊधम शान्त कर उन्हें ठिकाने ले आता था, इसलिए उसका नाम पडा मल्ल अरि. इसी का अपभ्रंश "मल्हारी" हुआ. धर्म न्याय से युद्ध करने के बारे में उसकी अत्यन्त निष्ठा थी. उसने कभी पीठ दिखाकर भाग रहे शत्रु पर वार नहीं किया, इसलिए उसका नाम मारतोंड हुआ, इसी का अपभ्रंश "मार्तंड" हुआ. इसी प्रकार वह दोनों का कृपालु सहायक था, साथ ही वह संगीत का रसिक भी था—उसका बनाया हुआ मल्हार नामक एक राग आज भी प्रचलित है. वह राग इतना सुमधुर था कि मियाँ नामक मुसलमान गायक ने उसी राग के आधार पर एक दूसरा राग "मियाँ का मल्हार" बना लिया. इसके अतिरिक्त बलिराजाने महाराष्ट्र में "महासुभा" तथा "नौ खंडों का न्यायी" यह अधिकारी भी नियुक्त किये थे, जो भूमिकर तथा न्यायदान के कार्य करते थे. यह भी दिखाई देता है कि इन अधिकारियों के नीचे अन्य भी कई कर्मचारी होते थे. उस "महासुभा" शब्द का विकृत आज "म्हसोवा" के रुप में दिखलाई देता है. वह यथासमय सारे खेती-फसलों का योग्य रीति से निरीक्षण करता था और किसानों को कर में छूट अथवा भरपाई देकर सब को आनंदित रखता था. इसी कारण आज भी मराठों में एक भी घर ऐसा नहीं मिलेगा कि जो अपनी खेती के सिवान के भीतर किसी एक बडे से पत्थर को "महासुभा" नाम न देता हो. आज भी उसे सिन्दूर से लेप उसके सामने ऊद जलाये विना और उस "महासुभा" देवता का नाम लिये विना तो कोई किसान बीज गिराने की अकरी पर मूठ भी नहीं लगाता, ना ही खेत में खुरपी चलाता है और ना ही खलिहान में अनाज के ढेर को दूसरी माप लगाता है. अनुमान तो यही है कि इलाके के सूबे बनाकर कर वसूल करने की बलिराजा की यही रीत यवन लोगोंने अपना ली है. क्योंकि ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं कि उस समय में यवन ही नहीं, मिस्त्र देश के भी कई विद्वान् यहाँ आकर ज्ञान प्राप्त करके अपने देश लौटते थे. तीसरे यह कि अयोध्या के निकट और काशी क्षेत्र के आस-पास के कुछ प्रदेश भी बलिराजा के अधिकार में थे. इन क्षेत्रों को दसवाँ खंड कहते थे. ऐसा लिखा मिलता है कि वहाँ के अधिकारी का नाम कालभैरी (कालभैरव) था. तथा यह भी मिलता है कि वह अधिकारी पहले कुछ दिनों तक काशी नगरी का कोतवाल था. वह गायन कला में इतना निपुण था कि उसने संगीत में अलग और नये राग का निर्माण किया है. तानसेन

के समान प्रसिद्ध गवैयों को भी इस राग के सामने नतमस्तक होना पड़ा. कालभैरवने अपनी कलात्मक बुद्धि से डौर नामक एक नये वाद्य का भी आविष्कार किया था. इस डौर वाद्य की रचना इतनी अदभुत् है कि ताल एवं सुर की दृष्टि से मृदंग, तवला आदि वाद्य भी उसकी बराबरी कदापि नहीं कर सकते. किन्तु इस वाद्य की उपेक्षा की जाने के कारण उसकी जितनी ख्याति होनी चाहिये, वैसी नहीं हो पायी. कालभैरव के सेवकों को भैरवाड़ी कहते थे, जिसका अपभ्रंश " भराडी " के रुप में मिलता है. इससे यही सिद्ध होता हैं कि इस देश में बलिराजा का राज्य अजपाल, जो दशरथ का पिता था, उसके तथा उसके समान अन्य क्षेत्रपतियों से भी बहुत विशाल था. इसी कारण सारे क्षेत्रपति उसकी नीति तथा आदेश के अनुसार चलते थे, यही नहीं, उनमें से सात क्षेत्रपति तो राजा बलि को कर देकर उसके आश्रित के रुप में रहते थे. इसीलिए उसका नाम " सात आश्रयीत " पड गया था. तात्पर्य यह कि जैसा ऊपर कहा गया है, बलिराजा का राज्य अति विशाल था. वह बहुत बलशाली था – इसीलिए तो उसके बारे में एक पुरानी कहावत मिलती है " जो हो बली, वो ऐठें कान " बलिराजा को जब अपने सरदारों को कोई काम सौंपना होता था, तो वह दरबार लगवाता था. दरबार में एक थाली में रोली-हलदी तथा पान का बीड़ा रखकर घोषणा करता था कि जिसमें यह काम करने का साहस हो, वह बीड़ा उठाये. इस प्रकार जिसमें यह काम पूर्ण कर दिखाने का साहस होता था, वह साहसी वीर महावीर * " हरहर "[1] की शपथ लेकर थाल में रखी हलदी को मस्तक पर लगाकर और नारियल सहित वह पान का बीड़ा उठाकर अपने सिर पर रखकर अपने पल्ले में बाँध लेता था. बलिराजा उसी वीर को वह काम सौंपता था. इसके वाद वह प्रणवीर बलिराजा की आज्ञा पाकर सेनासहित तल (डेरा) उठाकर शत्रु पर हमला बोलता था. इसी आधार पर इस संस्कार अथवा समारोह का नाम " तळ उचलणे " (डेरा उठाकर हमले के लिए कूच करना) पड़ गया होगा. इसी का मराठी अपभ्रंश " तळी उचलणे " हो गया हैं. बलिराजा के जितने भी शूर वीर थे, उनमें से भैरोवा, जोतीवा तथा नौ खंडोवा यह सारे प्रजा को सुखी करने के लिए

---

* नोट :—1 " हरहर " शब्द का अपभ्रंश ही " हुरा हुरा " होगा, ऐसा अनुमान है. क्योंकि अंगरेज लोगों में एक बहुत पुरानी परंपरा दिखाई देती है. वह यह कि वे " हुरा, हुरा "कहे विना आनंद के अवसर पर ताली बजाते ही नहीं हैं. उसी प्रकार उनके सेनापति अपनी सेना को " हुरा हुरा " कहे विना शत्रु पर टूट पडने की आज्ञा ही नहीं देते हैं. इतिहास में कहीं-कहीं ऐसा उल्लेख मिलता है, जैसे " Hurrah, Boys! Loose the saddle or win the horse! "

अपने प्रयत्नों में कोई कसर नहीं छोड़ते थे. यही कारण है कि आज भी सारे मराठा समाज ने कोई भी शुभ कार्य आरंभ करने से पूर्व "तळी उचलणे" यह पूजा समारोह संपन्न करना छोड़ा नहीं है. वे मराठा लोग इस संस्कार में बहिरोबा, जोतीबा, तथा खंडोबा को देवता सम मानकर उनके नाम लेकर "तळी उचलणे" विधि पूरा करने लगे – वे इस प्रकार देवताकी जयजयकार करते हैं "हरहर महादेव, बहिरोबा जोतीबा चा * चांग भला, सदानंदाचा उदय आणि मल्लूखान अहंकार". इसके अतिरिक्त बलिराजा "हर हर महादेव" के नाम से आदित्यवार को अपनी प्रजासहित पवित्र-दिन मानता और मनाता था. यही कारण है कि आज के मराठे अर्थात् मांग, महार, कुनबी, माली आदि जाति के लोग प्रत्येक आदित्यवार को अपने घर के कुलदेवता की मूर्ति पर जल चढाकर उसे जवार अनाज अथवा जवार की रोटी का नैवेद्य दिखाये बिना मुख में अन्न का कण तो क्या, पानी की बूँद भी नहीं रखते.

धोंडीबा : बलिराजा की सीमा पर आकर वामन ने क्या किया?

जोतीराव : वामन सेनासहित एकदम बलि के राज्य में घुस गया और प्रजा को पीडित करता हुआ बलिराजा की मुख्य राजधानी के पास आ धमका. बलि ने देखा कि सारे देश में फैली हुई उसकी सेना इतना शीघ्र उपस्थित न हो पायेगी, सो उसने अपनी व्यक्तिगत विशेष सेना साथ ली और वामन का सामना करना आरंभ कर दिया. वह क्रम इस प्रकार था –भाद्रपद मास की कृष्ण प्रतिपदा से कृष्ण अमावस्या तक बलिराजा प्रतिदिन वामन के साथ युद्ध कर सायंकाल अपने राजप्रासाद में विश्राम करने लौट आता था. इस कारण दोनों सेनाओं के जितने सैनिक उस कृष्ण पक्ष में एक दूसरे से लड़ते-लड़ते मारे गये, उनकी मृत्यु की तिथियाँ याद रह गयीं. इससे अनुमान होता है कि इसी कारण से प्रतिवर्ष भाद्रपद मास की उस संबंधित प्रत्येक तिथि को पितरों को पिंड दान करने की प्रथा रूढ हुई होगी. इसके पश्चात् आश्विन शुद्ध प्रतिपदा से लेकर शुद्ध अष्टमी तक बलिराजा वामन के साथ युद्ध करने में इतना उलझा रहा कि अपने तन-मन की सुध भी भूल गया और उन आठ दिनों में वह विश्राम करने महल में नहीं लौटा. उधर बलिराजा की विंध्यावली रानी ने अपने खोजे आराधी सेवकों के द्वारा एक गढ़ा खुदवाया. उसमें उन सेवकों से लकड़ियाँ डलवाकर

---

* खंडोबा देवता के भक्तगण जयजयकार करते हुए सब मिलकर एक "तळी" आरती की थाली उठाते हैं, जिसमें नारियल, बीडा, छुहारा, हलदी-रोली आदि पूजा की वस्तुएँ होती हैं.

रानी उन आठ रातों और आठ दिनों तक बिना कुछ खाये-पिये आगे केवल एक पानी का घड़ा रख 'हर हर महावीर' से अपने पति के विजय की कामना करती और वामन की पीडा टलनेकी प्रार्थना करती हुई आसन जमाये बैठी रही. तभी आश्विन शुद्ध अष्टमीके दिन समाचार पहुँचा कि बलिराजा रणभूमि में खेत रहा. समाचार सुनते ही रानी ने गढे की लकडियों में आग लगाई और धधकती आग में कूदकर जल मरी. संभवतः उसी दिन से सती होने की प्रथा चल पड़ी हो. जब वह सती विंध्यावली पतिके विरह दुःख से दुखी होकर आग में कूद जल मरी, तब उसकी सेविकाओं और खोजे आराधी सेवकोंने अपने पहने वस्त्र फाड़कर जला डाले और छाती पीट-पीटकर, हाथ पटक-पटककर और उस गढेके चारों ओर घूम-घूमकर रानी के गुणों का स्मरण करके बहुत शोक मनाने लगे. वह इस प्रकार कि "मेरी दयालु रानीबाई, तेरा ढिंढोरा गाजे सब ठाईं" इत्यादि. दुःख भरी इस करुणकथा की स्मृति कहीं फिर से जाग न उठे, संभवतः इसी हेतु से विप्रोंके निर्दयी ग्रंथकर्ताओं ने बाद में उचित अवसर पाकर उस गढे को होमकुंड का रुप दे दिया और उस बारे में अनेक असत्य कथाएँ रचकर ग्रंथों में लिख दी होंगी. उधर बलि के खेत रहने पर बाणासुर ने वामन के साथ दिन भर बहुत कष्ट सहन करके भी बहुत डटकर युद्ध किया और बाद में आश्विन शुद्ध नवमी की रात वह अपनी बची-खुची सेना लेकर भाग गया. इस विजय के कारण वामन गर्वोन्मत हो उठा. उसने जब देखा कि बलिराजा की राजधानी में कोई पुरुष नहीं है, वैसा अवसर पाकर उसने आश्विन शुद्ध दशमी के प्रातःकाल उस नगर में प्रवेश किया और वहाँ के सब घरों के आँगन का सोना लूट लिया. इसी का अपभ्रंश रुप "शिलंगणाचे सोने लुटले" (सीमोल्लंघन कर सोना लूटा) इस प्रकार बना. फिर वह तुरंत अपने घर लौट गया. इसके बाद यह हुआ कि उसकी पत्नी ने पहले बलिराजा की आटे की जो प्रतिमा उपहास करने के लिए घर में बना रखी थी, उस प्रतिमा को उसने अपने घर की देहली पर रख दिया और जब वामन घर में प्रवेश करने लगा, तो वह कहने लगी "यह देखिए, यह बलिराजा आपसे फिर युद्ध करने आ गया है." तब वामन ने आटे के उस बलिराजा को पाँव से भीतर की ओर ढकेला और घर में प्रविष्ट हुआ. उस दिन से लेकर आज तक विप्रगणों के कई कुलों में यह प्रथा आज भी प्रचलित है कि प्रतिवर्ष आश्विन की दशमी तिथि को दशहरे के दिन देहली के बाहर स्त्रियाँ आटे अथवा चावल का बलिराजा बनाकर रखती हैं और विप्र पुरुष उस आकृति की छाती पर बाँयाँ पाँव

रखकर कचनार की टहनी से उस आकृति का पेट बेधते हैं और फिर प्रतिमा को लाँघकर घर में प्रविष्ट होते हैं. इसी भाँति उधर आश्विन शुद्ध दशमी की रात को बाणासुर के सैनिक भी अपने घर पहुँचे. उनकी पत्नियों ने तब तक यह भविष्य जान लिया था कि "अवश्य ही दूसरा बलिराजा आयेगा" और इस आशा को मन में लेकर वे पत्नियाँ घर की देहली पर खड़े होकर अपने पति की आरती उतारते हुए कहने लगीं "इडा पीडा (द्विजाचा अधिकार) जावो आणि बळीचे राज्य येवो" [संकट पीडा (द्विजों का अधिकार) जावे, बलि का राज आवे]. उस दिन से लेकर आज के दिन तक सैंकडों साल बीते, तथापि बलि के राज्य के अनेक प्रदेशों में यह प्रथा है कि क्षत्रिय-स्त्रियाँ प्रतिवर्ष आश्विन शुद्ध दशमी को सायंकाल अपने पति तथा पुत्र की आरती उतारकर ऊपर लिखी प्रार्थना गाती हैं. आज भी उन्होंने यह मनोकामना छोड़ी नहीं है कि अगला दूसरा बलिराजा फिर से आये. इससे अनुमान होता है कि राजा बलि का राज्य कितना उत्तम रहा होगा. धन्य है वह बलिराजा और धन्य है यह राजनिष्ठा. एक ओर वे राजनिष्ठ लोग और एक हैं अब के पवित्रम्मन्य हिन्दू कि जो अंगरेजों से बड़े-बड़े ओहदे पाने की आशा से इंग्लैण्ड की रानी के जन्मदिन पर सभा के बीच तो उसके उत्कर्ष के विषय में लंबे चौड़े भाषण देते हैं और समाचारपत्रों में अथवा व्यक्तिगत चर्चा में उनके विरुद्ध लिखते-बोलते हैं.

धोंडीबा : अच्छा, यह तो कहिये कि बलिराजा द्वारा बुलाये गये सरदार क्या उसकी सहायता करने अंत तक आये या नहीं?

जोतीराव : वे आये, किन्तु बहुत देर बाद. जैसे ही छोटे-छोटे क्षेत्रपतियों सहित अपनी सेना लेकर वे आश्विन शुद्ध चतुर्दशी के दिन बाणासुर से आ मिले, बलिराजा के राज्य के सारे विप्र अपने प्राण सँभाले वामन की ओर दौड़े. इस घटना से वामन के प्राण सूख गये. उसने सारे विप्रों को एकत्रित किया और बाणासुर से बचाव करने की रीति सोचने लगा. इसी सोच में वह आश्विन शुद्ध पूर्णिमा* को सारी रात जागता रहा और अपने देवताओं के आगे प्रसाद रूपी जाल बिछाता रहा. बाद में अगले दिन वह अपने स्त्री एवं बाल-बच्चों सहित सारी सेना साथ लेकर अपने राज्य की सीमा पर जा पहुँचा और वहाँ बाणासुर के आने की प्रतीक्षा करने लगा.

धोंडीबा : तब बाद में बाणासुर ने क्या किया?

---

* जिसे कुजागिरी अथवा कोजागरी पूर्णिमा कहते है.

जोतीराव : बाणासुर ने वामन पर एकदम चढाई की और पूरी तरह उसकी कमर तोड़कर उसके पास जो कुछ था, सब छीन लिया. इसके बाद उसने वामन को उसके सब साथियों सहित दुर्गत बनाकर पहले तो अपने क्षेत्र से बाहर हिमालय पर्वत की ओर भगा दिया. फिर उसने उस पर्वत की तलहटी में डेरा डाला और वामन को दाने-दाने के लिए तरसा दिया. फलस्वरुप वामन के अनेक लोग भूखे मरने लगे. इस कारण वामन जी का अवतार वहीं समाप्त हो गया अर्थात् वामन महोदय मृत्यु को प्राप्त हुए. इससे बाणासुर के लोग बहुत आनन्दित हुए. प्रसन्न होकर कहने लगे कि वामन विप्रों की एक बडी उपाधि थी. वह नष्ट हुई, इस प्रकार अपना एक संकट दूर हुआ. तभी से विप्र को उपाध्ये कहने की परम्परा पड़ी होगी. इसके बाद उन उपाध्यों ने युद्ध में मारे गये अपने स्वकीय जनों के नाम से अपने निवासस्थान पर ही एक चिता (जिसे आजकल होली कहते हैं) जलाई और मृतक कार्य सम्पन्न किया. क्योंकि विप्रों में पहले से ही शव का दाह करने की प्रथा प्रचलित दिखाई देती है. इसी प्रकार वहाँ के सब क्षत्रियों ने और बाणासुर ने भी युद्ध में काम आये अपने स्वजनों के नाम से फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा को वीररुप दिखलाकर हाथ में नंगी तलवार लेकर, बडे उल्लासपूर्वक नाच-नाचकर मृत स्वजनोंको भूमि में गाड़कर सम्मान दिया. क्योंकि क्षत्रियों में मृत देह को गाड़ने की प्रथा बहुत काल से चली आरही है. अन्त में बाणासुर ने उपाध्यों से रक्षा करनेके लिए अपने कुछ लोग वहाँ रख छोड़े और शेष सरदारों को साथ लेकर वह अपनी मुख्य राजधानी वापस लौट आया. वापस लौटकर उसने जो आनंद मनाया, उसका पूरा वर्णन यदि किया जाय, तो ग्रंथ बहुत विस्तृत हो जायेगा. इसलिए उसका केवल सारांश (कहता हूँ.)–उसने अपने सारे धन की गिनती की. आश्विन मासके कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को उस धन की पूजा की. कृष्ण चतुर्दशी को तथा अमावस्या को उसने अपने सरदारों को उत्तम भोज दिया और खूब उत्सव मनाया. इसके बाद कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा के दिन उसने अनेक सरदारों को उनकी योग्यता के अनुसार दानादि देकर उन्हें अपने-अपने प्रदेश में जाकर काम पर उपस्थित रहने की आज्ञा दी. उनके लौट आने से प्रदेश के सभी बाला-युवा-वृद्धा नारियों को इतना आनंद हुआ कि उन्होंने कार्तिक शुद्ध द्वितीया के दिन अपने-अपने भाईयों को यथाशक्ति भोजन देकर तृप्त किया. फिर उनकी आरती उतारकर कहा "इडा पीडा जावो आणि बळीचे राज्य येवो" [इडा (संकट) पीडा दूर होवे, बलि का राज आवे] ऐसा कहकर भविष्य में आने वाले दूसरे बलिराजा

की याद करा दी. उस दिन से लेकर आज तक भी प्रतिवर्ष दिवाली में भैय्या-दूज के दिन क्षत्रिय कन्याएँ अपने भाईयों को आशीर्वाद देती हैं तो यही कि बलि का राज आवे. उधर उपाध्यों के कुल में इस प्रकार याद दिलाने की कोई प्रथा नहीं मिलती.

धोंडीबा : आपने इस घटना का इस प्रकार से वर्णन किया, सो तो ठीक, किन्तु भागवत आदि पुराणों में तो कुछ अन्य ही प्रकार से वर्णित है. उसमें लिखा है कि आदिनारायण ने बलि को पाताल में धँसाने के हेतु वामनावतार लिया. वामन ने भिखारी का स्वाँग रचाया और बलिराजा को ठगकर उससे तीन पग भूमि माँग ली. इसके बाद उसने भिखारी का स्वाँग उतारा और शरीर को इतना विकराल बनाया कि दो ही पगों में सारी पृथ्वी और सारा आकाश व्याप लिया. फिर बलिराजा से पूछा कि अब मैं तीसरा पग कहाँ रखूँ ? तब बलिराजाने विवश होकर उस अगडधत्ते से कहा "अब तू तीसरा पग मेरे सिर पर रख" सुनते ही उस अगडधत्ते ने बलिराजा के सिर पर तीसरा पग रखा और बलिराजा को पाताल में धकेलकर अपना वचन पूरा करा लिया. वामन के उपाध्यों के भागवत आदि इतिहासग्रंथों में तो यही लिखा है, किन्तु आपके वर्णन के अनुसार वह सब असत्य सिद्ध होता है. इस विषय में आपका क्या कहना है—तनिक कहिये तो.

जोतीराव : अब तू ही सोच देख कि जब उस विकरालदेही ने दो पगों मे सारी पृथ्वी और आकाश व्याप लिया होगा, तो उस अगडधुत्ते के पहले पैर के नीचे गाँव के गाँव दबकर नष्ट ना हुए होंगे? है या नहीं? दूसरे यह कि जब उस विकरालदेही ने दूसरा पैर आकाश में रखा होगा, तो बड़ा भीड़-भड़क्का मचा होगा. कई तारे एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर हुए होंगे या नहीं? तीसरे यह कि उस हट्टे-कट्टे अगडधुत्ते ने जब दूसरे पग से सारा आकाश भर दिया होगा, तो कमर से ऊपरवाला उसका अपना धड कहाँ रहा होगा? क्योंकि मनुष्य का दूसरा पैर बहुत हुआ तो नाभि तक के आकाश तक पहुँचता है. इससे यही सिद्ध होता है कि उस विशालदेही का कमर से सिर तक का आकाश अवश्य ही खाली रहा होगा – फिर उसने खाली आकाश में या स्वयं अपने ही सिर पर तीसरा पग रखकर अपना वचन पूरा कर लेना था. सो तो रहा दूर, उसने धोखा-धड़त्ती करके अपना तीसरा पग बलिराजा के मस्तक पर रखकर उसे पाताल भेज दिया. ऐसा क्यों किया?

धोंडीबा : वह विशालदेही तो आदिनारायण का अवतार था ना? और उसने ही ऐसा छल किया? धिक्कार हो ऐसे छली-कपटी आदिनारायण को

अवतार कहने वाले इतिहासकारों का. क्योंकि उनके लिखे ग्रंथोंसे यह सिद्ध होता है कि वामन कपटी, हत्यारा और कृतघ्न था – स्वयं दाता को ही उसने छल करके पाताल पहुँचा दिया.

जोतीराव : चौथी बात यह कि जब उस विशालकाय वामन का सिर आकाश से भी ऊपर स्वर्ग तक पहुँचा होगा, तो उसे वहाँ से जोर से चिल्लाकर बलि से पूछना पड़ा होगा कि "मेरे दो ही पगों में सारी पृथ्वी-आकाश समा गये है, अब मैं अपना तीसरा पग कहाँ रखूँ और अपना स्वीकृत वचन कैसे पूरा करुँ ? क्योंकि उस विशालदेही का मुख था आकाश में और बलिराजा था भूमि पर खड़ा हुआ. दोनों में असंख्य कोसों की दूरी. इतने जोर से जब पुकारा होगा, तो रूसी, फ्रांसीसी, अंगरेज और अमरीकन आदि लोगों में से किसीको उस चिल्लाहट का एक शब्द भी सुनाई नहीं दिया. यह कैसे? अच्छा, दूसरी बात यह कि पृथ्वी पर खडे उस मानव बलिराजाने जब विशालकाय को उत्तर दिया होगा कि "तू तीसरा पैर मेरे सिर पर रख ले" भला यह वाक्य भी उस ऊँचे-लम्बे बंवे को कैसे सुनाई दिया होगा? क्योंकि बलि तो भूमि पर था और उसके जैसा अगडधुत्ता विचित्र प्राणी भी नहीं बना था. पाँचवे यह कि उस अगडधुत्ते देही के भार से भूमि रसातल में क्यों न धँस गयी? यह तो बहुत आश्चर्य की बात है.

धोंडीबा : वह तो ठीक ही हुआ जो भूमि धँसी नहीं, अन्यथा हम लोग यह दिन देख पाते? भला विकरालदेही ने क्या खाकर अपने प्राण बचाये होंगे ? अजी, वह मोटा-तगड़ा देही जब मरा होगा, तो उसके अतिविशाल शव को स्मशान ले जाने के लिए कँधा देने वाले चार जन कहाँ से मिले होंगे? अच्छा, यदि कहा जाय कि उसे वहीं उसी ठाँव लकडियाँ रचाकर जला दिया था, तब भी उसे जलाने को इतनी सारी लकड़ियाँ और उपले कहाँ से मिले होंगे? अच्छा, यदि कहें कि उसे जलाने को पर्याप्त लकडी नहीं मिली, तो क्या उसके मृत शरीर का कुत्तों-गीदडों ने वही पर भोज लगा चैन मनाया होगा? तात्पर्य यह कि भागवत आदि ग्रंथों से इन शंकाओं का निवारण नहीं होता. सिद्ध यही होता है कि उपाध्योंने बाद में अवसर पाकर ऐसी मूल दंतकथाओं के आधार पर यह सारे पुराणग्रंथ बनाये होंगे.

जोतीराव : अरे बाबा, वह भागवत तू एक बार पढकर देख. तब तुझे लगेगा कि इससे तो इसापनिती कहीं अच्छी.

□ □

भाग सातवाँ

ब्रह्मा, ताडपत्र पर लिखने की प्रथा, जादूमंत्र, संस्कृत का मूल, अटक नदी के पार जाने का निषेध, ब्राह्मण पहले घोडे आदि प्राणियों का मांस खाते थे. भट्ट, राक्षस, यज्ञ, बाणासुर का निधन, परिवारी, सूत की डोरी का चिह्न, बीजमंत्र, महार, शूद्र, कुलकर्णी, कुनबिन, शूद्रोंका द्वेष, सोवळे, पवित्र वस्त्र धर्मशास्त्र, मनु, भट्, पंतजी की शिक्षा, बहुत भयानक परिणाम, प्रजापति की मृत्यु, ब्राह्मण इत्यादी के विषय में ....

धोंडीबा : वामन की मृत्यु के बाद उपाध्यायों का अधिकारी कौन हुआ?

जोतीराव : इस विषय में कोई बडा कुलीन अधिकारी नियुक्त करने को समय नहीं मिल सका, इसलिए ब्रह्मा नामक एक चतुर लिपिक था. वही राज्य का कारोबार चलाने लगा. वह नयी नयी योजनाएँ बनाने में अति निपुण था, साथ ही जैसा अवसर आ पडे, वैसा आचरण करके अपना स्वार्थ पूरा करने में पूरा गुरु था. उसके कहने पर कोई रंचमात्र भी विश्वास नहीं करता था. क्योंकि चार मुख और चार भिन्न बातें, इसीलिए संभवतः उसे चार मुखों वाला कहने की प्रथा चल पड़ी है. कहने का तत्पर्य यह कि वह अत्यन्त सावधान हठी, धूर्त, साहसी और निर्दयी था.

धोंडीबा : ब्रह्माने पहले क्या किया?

जोतीराव : ब्रह्माने पहले कील से खोद खोदकर ताडपत्र पर लिखने की युक्ति खोज निकाली. उसे जितने भी ईरानी जादूमंत्र याद थे अथवा जितने भी गपोड़े याद थे, उनमें से कई कथाएँ घुसेडकर उसने उन सबको मिलाकर उस काल की सर्वकृत (जिसका अपभ्रंश रुप संस्कृत) प्रचलित भाषा में सारी कथाओं का सार ताडपत्रों पर लिख दिया, ठीक वैसी शैली में कि जैसे आज कल फारसी कविता शैली में छोटे-छोटे शेर होते हैं. आगे जाकर उन कविताओं की बहुत ख्याति फैल गयी. संभवतः इसीसे यह कहने की रीत चल पडी होगी कि ब्रह्मा के मुख से उपन्यास सहित जादूमंत्र की विद्या निकली है इसी समय उपाध्याय लोग अनाज की कमी के कारण भूख से मरने लगे, इसलिए वे वापस लौटने के लिए लुक-छिपकर ईरान भागने लगे, तब उसने यह निषेधाज्ञा लागू कर दी कि कोई भी अटक नदी को अथवा समुद्र को लाँघकर न जाये, और उसके अनुसार उसने वैसा सैनिक-प्रबंध भी करा दिया.

धोंडीबा : तब उन लोगों ने झाडियों में लुक-छिपकर क्या खा कर अपने प्राण बचाए?

जोतीराव : उन्होंने वहाँ के वृक्षों के फल, पत्ते, भूमि के भीतर के कंद मूल, और जंगल के अनेक प्रकार के पशुपक्षी खाना शुरु कर दिया. इतना ही नहीं, कईयों ने तो अपने सवारी वाले घोडों को भी मारा और उन्हें भूनकर खा कर अपने प्राण बचाये. इस कार्य के कारण उनके रक्षक प्रहरियों ने उन्हें "भ्रष्ट" कहना आरंभ कर दिया. आगे चलकर "भ्रष्ट" शब्द का अपभ्रंश "भट्ट" तथा "रक्षक" शब्द का अपभ्रंश "राक्षस" हो गया. इसके पश्चात् भट्टजनों ने वैसी कठिन परिस्थिति में फँसने के कारण अनेक प्रकार के प्राणियों का मांस खाया, किन्तु अपने इस कार्य की उन्हें लज्जा आने लगी और उन्होंने इस प्रकार के भोजन को रोकने का प्रयत्न किया तो सही, किन्तु कई भट्टज़नों को मांसाहार का चसका लग चुका था, सो उनकी आदत छूटे नहीं. तब उन्होंने कुछ काल बाद अवसर पाकर अपने नीच कर्म के अपराध को छिपाने का यत्न किया, वह इस भाँति कि उन्होंने पशु का वध करके मांसाहार करना अपार पुण्यकार्य है, ऐसा कहकर पशुवध को पशुयज्ञ, अश्वमेध आदि प्रतिष्ठित नाम दे दिये और ग्रंथों में भर दिये.

धोंडीबा : इसके बाद ब्रह्मा ने क्या किया?

जोतीराव : आगे चलकर बलिराजा के पुत्र बाणासुर के मरने के बाद उसके (बलिराजाके राज्य में कोई मुख्य नायक नहीं रहा. फलस्वरुप जिधर देखो उधर हर कोई स्वच्छंदचारी बन गया और अपने घर का राजा बनकर भोग-विलास में डूब गया. ऐसा अवसर देखकर ब्रह्मा ने अपने साथ सारे भूखे भट्ट-परिवारों को (आजकल इसका अपभ्रंश परिवारी मिलता है) साथ लेकर राक्षसों (रक्षक पर अचानक ऐसा आक्रमण किया कि उन्हें जड मूल से उखाड दिया. इसके बाद बाणासुर के राज्य में घुसने से पूर्व उसने ऐसा विचार किया कहीं ऐसा न हो कि अपने पर फिर से संकट आ पडे और हम सब तितर-बितर हो जायें, तब अपने परिवार के लोग एक-दूसरे को पहचान नहीं पावेंगे. ऐसा सोचकर ब्रह्माने अपने समस्त परिवारीय जनों के गले में जातिसूचक एक चिह्न अर्थात् श्वेत सूत का धागा कि जिसे आज ब्रह्मसूत्र कहते हैं, डाल दिया. फिर उन्हें एक जातिबोधक बीजमंत्र कि जिसे आज गायत्री मंत्र कहते हैं, सिखला दिया. साथ ही यह कठोर निषेध आदेश भी दिया कि चाहे कैसा भी प्रसंग आ पडे, भट्टजन क्षत्रियों को वह मंत्र ना बतावें. इस रीति से भट्ट लोग अपने परिवार के सदस्यों को सहज ही में पहचानने लगे.

धोंडीबा : इसके बाद ब्रह्मा ने और क्या किया?

जोतीराव : इसके बाद ब्रह्मा अपने सारे परिवारी भट्टजनों को साथ लेकर बाणासुर के राज्य में घुस गया और उसने कई सारे छोटे-बडे सरदारोंकी बडी दुर्गत बनायी. उसने लगभग सारा क्षेत्र हस्तगत कर लिया. इस रण में जो वीर रणभूमि में कमर कसकर लड़े, वे महा + अरि (आज इसीका अपभ्रंश महार हो गया हैं) क्षत्रिय थे, उन्हें तथा और भी जितने लोग उसके हाथ लगे, उनका सर्वस्व लूटकर अपनी प्रभुता के गर्व में उसने उन्हें क्षुद्र (जिसका अपभ्रंश शूद्र है) कहकर अपना दास बना लिया. उनमें से कईयों को अपने लोगों के घरों में सेवा चाकरी करने के लिए बाँट दिया. शेष रहे शूद्रों को एक-एक भट्ट कर्मचारी के साथ अलग-अलग गाँवों में भेज दिया. यह ब्राह्मण कर्मचारी गाँव की कुलकरणी अर्थात किसानों की पट्टेदारी करता और शूद्रों से वह खेती में काम कराके उन्हें केवल पेट भरने भर को देता. तभी से ऐसी प्रथा चली होगी. उस कर्मचारी का नाम कुलेकरणी पडा (जिसका आज अपभ्रंश रुप कुलकर्णी है) इसी प्रकार उन शूद्र कुलों के नाम "कुलवाडी" हुए (इसीका अपभ्रंश आज "कुणवी" अथवा "कुनबी" हुआ हैं). उन दास कुनबियों की स्त्रियों को खेती में करने योग्य पर्याप्त काम नहीं मिलते थे, इसलिए कभी कभी उन्हें कारणवश बाम्हनों के घरों में चाकरी करने जाना पडता था – यही कारण है कि कुनबी स्त्री और दासी में तनिकभी भेद नहीं दिखलाई देता. उपयुक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि आगे भी सारे भट्ट बाम्हन धीरे-धीरे अधिकाधिक मदान्ध होते गये और वे शूद्रों को कितना नीच मानने लगे. इस विषय में पूरी वस्तुस्थिति लिखी जाय, तो अवश्य ही एक अलग ग्रंथ हो जायेगा. इस भय के कारण केवल कुछ ही ऐसी बातें जो आज भी दिखाई देती हैं, केवल उन्हींको संक्षेप में लिखता हूँ. वह इस प्रकार हैं – आज के बाम्हन (चाहे वह झाड़-बुहार करने वाली मांग-महार जाति के लोगों जैसे अनपढ़ ही क्यों न हों) जब भूखे मरने लगते हैं, तो कोई भी नीच कर्म करने में पाप-पुण्य का कोई विधि-निषेध नहीं मानते और अज्ञानी शूद्रों को ठगने में थोडा भी आगा-पीछा नही सोचते. अन्त में हारकर यदि कोई उपाय काम नहीं देता, तो वे शूद्रों के द्वारे धर्म का नाम लेकर धर्म के बहाने "दे दान दे दान" पुकारकर पेट की आग बुझाते हैं. किन्तु शूद्रों के चाकर बनकर वे उनके खेत में ढोर-डंगरों की रखवाली नहीं करते, गोठे से गोबर उठाकर खाद के गढे में नहीं डालते, शूद्रों के खेत में हल

ाने में, कुएँ पर मोट चलाने में और गाडी हाँकने में, खेत की
गोडाई और निराई करने में, गू के खाद वाली टोकरियाँ ढोकर
ो जड़ में खाद डालने में उन्हें लाज आती है. जवार के पूले बाँधकर
ानाने में, रात को हाथ में लाठी लेकर खेत की रखवाली करने में,
के खेत से अनाज और साग-सब्जी का बोझा ढोकर शूद्रों के घर
कर रखने में वे लजाते हैं, क्या उनसे आज शूद्र के घर सेवक
उनके घोडे का खरहरा करते बनेगा? उनके घोडे के आगे दौडते
? बगल में दबाकर उनके जूतों की रखवाली करते बनेगा? उनके
ड़-बुहारने में, उनके घर के जूँठे बरतन माँजने में, घर का दिया-बाती
र दीपक जला रखने में और उनके घर कीचड-मिट्टी ढोकर बेगारी
म करने में उन्हें बड़ी लाज जो लगती है. उसी प्रकार बाम्हन स्त्रियाँ
ाज शूद्रों की सेविका बनकर घर की स्त्रियों को उबटन मलने में,
ाहला धुलाकर बाल सँवारने में, घरों को झाड़-बुहारकर घर की स्त्रियों
ए बिछौने बिछाकर स्त्रियों के पाँव चाँपने में, उनकी साडियाँ धोने
जूते सँभालने में लजाती हैं. आगे चलकर जब वे महा + अरि
) अपने शूद्र-भाईयों को बाम्हनों के हाथ से छुडाने के लिए उन पर
आक्रमण करने लगे, तब तो सारे भट्ट शूद्रोंका इतना द्वेष करने
कि शूद्रों का छुआ अन्न भी वे न खाते. उस पुराने द्वेष का ही
म है कि आज के बाम्हन-पंडितजी शुद्र का अन्न तो क्या, पानी भी
पीते. कोई शूद्र हमें छू ना ले, इसीलिए उन्होंने शुचिस्नात (सोवळे)
की रीत चला दी. नहा धोकर गीले वस्त्र पहनकर पूजा करते. शुचि-पूत
से कोई छू न जाय, इसकी वे बहुत चिन्ता करते हैं. आगे चलकर
ही बाम्हन ग्रंथकारों ने इस शुचिस्नात (सोवळे) प्रथा का बहुत बोलबाला
. सोवळे की ऐसी झूठी प्रतिष्ठा बनाने में उन्होने मन की लाज तो
खायी सो खायी, लोक लाज तो रखते! किन्तु नहीं – उन्होंने रीत
दी कि किसी शुचिपूत सोवळे बने बाम्हने को यदि शूद्र का स्पर्श
ाय, तो बाम्हन अपवित्र हो जाता है ऐसी बातों को धर्मशास्त्र कहकर
पुस्तकें उन्होंने लिख डाली हैं, किन्तु ऐसी पुस्तकें धर्म शास्त्र नहीं,
ेत्र शास्त्र हैं. कुछ समय बाद यदि शूद्रों में पूर्वकाल की अपनी श्रेष्ठता
मृति जाग उठी, तो वे हमारी छाती पर मूँग दले बिना न रहेंगे, ऐसा
कर भय के मारे उन्होंने नियम बना दिया कि शूद्र को कोई भी विद्या
कुल न सिखावे. ऐसी मनाही करके बहुत सन्तोष पाया उन्होंने! इतना
हीं, उन्होंने यह प्रतिबंध भी लगा दिया कि कोई भी पंडित यदि परमार्थसम्बधी

धोंडीबा : इसके बाद ब्रह्मा ने और क्या किया?

जोतीराव : इसके बाद ब्रह्मा अपने सारे परिवारी भट्टजनों को साथ लेकर बाणासुर के राज्य में घुस गया और उसने कई सारे छोटे-बडे सरदारोंकी बडी दुर्गत बनायी. उसने लगभग सारा क्षेत्र हस्तगत कर लिया. इस रण में जो वीर रणभूमि में कमर कसकर लड़े, वे महा + अरि (आज इसीका अपभ्रंश महार हो गया हैं) क्षत्रिय थे, उन्हें तथा और भी जितने लोग उसके हाथ लगे, उनका सर्वस्व लूटकर अपनी प्रभुता के गर्व में उसने उन्हें क्षुद्र (जिसका अपभ्रंश शूद्र है) कहकर अपना दास बना लिया. उनमें से कईयों को अपने लोगों के घरों में सेवा चाकरी करने के लिए बाँट दिया. शेष रहे शूद्रों को एक-एक भट्ट कर्मचारी के साथ अलग-अलग गाँवों में भेज दिया. यह ब्राह्मण कर्मचारी गाँव की कुलकरणी अर्थात किसानों की पट्टेदारी करता और शूद्रों से वह खेती में काम कराके उन्हें केवल पेट भरने भर को देता. तभी से ऐसी प्रथा चली होगी. उस कर्मचारी का नाम कुलेकरणी पडा (जिसका आज अपभ्रंश रुप कुलकर्णी है) इसी प्रकार उन शूद्र कुलों के नाम " कुलवाडी " हुए (इसीका अपभ्रंश आज " कुणबी " अथवा " कुनबी " हुआ हैं). उन दास कुनबियों की स्त्रियों को खेती में करने योग्य पर्याप्त काम नहीं मिलते थे, इसलिए कभी कभी उन्हें कारणवश बाम्हनों के घरों में चाकरी करने जाना पडता था – यही कारण है कि कुनबी स्त्री और दासी में तनिकभी भेद नहीं दिखलाई देता. उपयुक्त वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि आगे भी सारे भट्ट बाम्हन धीरे-धीरे अधिकाधिक मदान्ध होते गये और वे शूद्रों को कितना नीच मानने लगे. इस विषय में पूरी वस्तुस्थिति लिखी जाय, तो अवश्य ही एक अलग ग्रंथ हो जायेगा. इस भय के कारण केवल कुछ ही ऐसी बातें जो आज भी दिखाई देती हैं, केवल उन्हींको संक्षेप में लिखता हूँ. वह इस प्रकार हैं – आज के बाम्हन (चाहे वह झाड़-बुहार करने वाली मांग-महार जाति के लोगों जैसे अनपढ़ ही क्यों न हों) जब भूखे मरने लगते हैं, तो कोई भी नीच कर्म करने में पाप-पुण्य का कोई विधि-निषेध नहीं मानते और अज्ञानी शूद्रों को ठगने में थोडा भी आगा-पीछा नही सोचते. अन्त में हारकर यदि कोई उपाय काम नहीं देता, तो वे शूद्रों के द्वारे धर्म का नाम लेकर धर्म के बहाने " दे दान दे दान " पुकारकर पेट की आग बुझाते हैं. किन्तु शूद्रों के चाकर बनकर वे उनके खेत में ढोर-डंगरों की रखवाली नहीं करते, गोठे से गोबर उठाकर खाद के गढे में नहीं डालते, शूद्रों के खेत में हल

हेंगा चलाने में, कुएँ पर मोट चलाने में और गाडी हाँकने में, खेत की खुदाई, गोडाई और निराई करने में, गू के खाद वाली टोकरियाँ ढोकर पेडों की जड़ में खाद डालने में उन्हें लाज आती है. जवार के पूले बाँधकर गंजी बनाने में, रात को हाथ में लाठी लेकर खेत की रखवाली करने में, शूद्रों के खेत से अनाज और साग-सब्जी का बोझा ढोकर शूद्रों के घर में लाकर रखने में वे लजाते हैं, क्या उनसे आज शूद्र के घर सेवक रहकर उनके घोडे का खरहरा करते बनेगा? उनके घोडे के आगे दौडते बनेगा? बगल में दबाकर उनके जूतों की रखवाली करते बनेगा? उनके घर झाड़-बुहारने में, उनके घर के जूँठे बरतन माँजने में, घर का दिया-बाती माँजकर दीपक जला रखने में और उनके घर कीचड-मिट्टी ढोकर बेगारी के काम करने में उन्हें बड़ी लाज जो लगती है. उसी प्रकार बाम्हन स्त्रियाँ भी आज शूद्रों की सेविका बनकर घर की स्त्रियों को उबटन मलने में, उन्हें नहला धुलाकर बाल सँवारने में, घरों को झाड़-बुहारकर घर की स्त्रियों के लिए बिछौने बिछाकर स्त्रियों के पाँव चाँपने में, उनकी साडियाँ धोने और जूते सँभालने में लजाती हैं. आगे चलकर जब वे महा + अरि (महार) अपने शूद्र-भाईयों को बाम्हनों के हाथ से छुडाने के लिए उन पर हमेशा आक्रमण करने लगे, तब तो सारे भट्ट शूद्रोंका इतना द्वेष करने लगे कि शूद्रों का छुआ अन्न भी वे न खाते. उस पुराने द्वेष का ही परिणाम है कि आज के बाम्हन-पंडितजी शुद्र का अन्न तो क्या, पानी भी नहीं पीते. कोई शूद्र हमें छू ना ले, इसीलिए उन्होंने शुचिस्नात (सोवळे) होने की रीत चला दी. नहा धोकर गीले वस्त्र पहनकर पूजा करते. शुचि-पूत शरीर से कोई छू न जाय, इसकी वे बहुत चिन्ता करते हैं. आगे चलकर शूद्रद्रोही बाम्हन ग्रंथकारों ने इस शुचिस्नात (सोवळे) प्रथा का बहुत बोलबाला किया. सोवळे की ऐसी झूठी प्रतिष्ठा बनाने में उन्होने मन की लाज तो बेच खायी सो खायी, लोक लाज तो रखते! किन्तु नहीं – उन्होंने रीत चला दी कि किसी शुचिपूत सोवळे बने बाम्हने को यदि शूद्र का स्पर्श हो जाय, तो बाम्हन अपवित्र हो जाता है ऐसी बातों को धर्मशास्त्र कहकर कई पुस्तकें उन्होंने लिख डाली हैं, किन्तु ऐसी पुस्तकें धर्म शास्त्र नहीं, अपवित्र शास्त्र हैं. कुछ समय बाद यदि शूद्रों में पूर्वकाल की अपनी श्रेष्ठता की स्मृति जाग उठी, तो वे हमारी छाती पर मूँग दले बिना न रहेंगे, ऐसा सोचकर भय के मारे उन्होंने नियम बना दिया कि शूद्र को कोई भी विद्या बिलकुल न सिखावे. ऐसी मनाही करके बहुत सन्तोष पाया उन्होंने! इतना ही नहीं, उन्होंने यह प्रतिबंध भी लगा दिया कि कोई भी पंडित यदि परमार्थसम्बधी

ग्रंथ पढे, तो ध्यान रखे कि उस ग्रंथ का एक भी शब्द शूद्र को सुनाई न दे. मनुस्मृति में इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं. इसी के आधार पर आज के " सोवळे " शुचिस्नात पंडित महोदय वह अपवित्र पुस्तक शूद्रों के सामने नहीं पढते. अब आजकल यद्यपि विद्याविभाग के ब्राह्मण अध्यापक ईसाई अंग्रेजी सरकार के डर से साफ साफ खुले रुप से तो नहीं कह सकते कि हम शूद्र को पढना-लिखना नहीं सिखायेंगे, फिर भी उनमें इतना साहस कहाँ कि वे अपने पूर्वजों की ठग-विद्या की पोल खोल दें. आज के शूद्रों को वास्तविकता का ज्ञान कराकर उन्हें अपना महत्व घटाना थोड़े ही है ? इसी कारण से वे शूद्रों के बच्चों को कामचलाऊ विद्या भी नहीं देते, उलटे नाना प्रकार की आधे-अधूरे देशाभिमान की झूठी बातें उन युवकों के मनों में भरकर उन्हें पक्का अंगरेज भक्त बना देते हैं. फिर अन्त में ऐसी-ऐसी कई भूल-भुलैय्या में फँसा देते हैं – कि देखो, शिवाजी जैसे धर्मभक्त अज्ञानी और शूद्र राजा ने अपने देश को म्लेच्छोंसे छुडवाकर गौ-ब्राह्मण का किस प्रकार पालन-संरक्षण किया था. ऐसी बातें कह-कहकर शूद्र युवकों को बाम्हन केवल खोखला धर्माभिमानी बनाकर रख देते हैं. इसी कारण वे युवक शूद्र समाज की प्रतिष्ठा बढाने के लिए बड़े-बड़े उत्तरदायित्वपूर्ण या संकट की संभावना से भरे बड़े-बड़े काम करने योग्य ज्ञानी नहीं बन पाते. कुल मिलाकर बात यह कि सभी सरकारी विभागों मे बाम्हनों की भरमार हैं और वे शूद्रों पर इतनी सफाई से अत्याचार करते है कि यदि उसका पूरा-पूरा ब्यौरा लिखा जाय, तो कलकत्ता में नील पैदा करने वाले अंगरेजों के अत्याचार उन अत्याचारों के सामने सौ मन में रत्ती बराबर भी नहीं तुलेंगे. अब दशा यह है कि शासन सत्ता तो सब ओर से बाम्हनों के ही हाथ है. अंगरेज तो कहने भर को सत्ताधारी हैं. इसलिए बाम्हन निर्धन तथा अज्ञानी शूद्र प्रजा की तो हानि कर रहे हैं और कोई भी नहीं कह सकता कि वे आगे भी सरकार का नुकसान नहीं करेंगे. हमारी सयानी चतुर सरकार यह वस्तुस्थिति पूरी तरह जानती है, किन्तु वह आँख-फूँटे का स्वाँग भरकर केवल बाम्हनों के कंधे का सहारा लेकर उन्हींका कहा सुनती है. इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ऐसी नीति के अन्ततागत्वा भयानक परिणाम होंगे. तात्पर्य यह – ब्रह्माने जब यहाँ के मूल निवासियों को दास बना लिया, तो वह घमंड से पूलकर इतना कुप्पा हो गया था कि महा आरियों (महारों) ने उपहास में उसका नाम " प्रजापति " रख दिया था. परन्तु ब्रह्मा की मृत्यु के बाद आर्यो का मूल भट्ट नाम धीरे-धीरे लुप्त होता गया और उनका नाम ब्राह्मण पड गया.

□ □

भाग आठवाँ

परशुराम, मातृवध, इक्कीस युद्ध अभियान, दैत्य, खंडेराव ने रावण की शरण ली, नौखंडो की जाणाई, सती आसरा, महारों के गले की काली डोरी, अतिशूद्र, अत्यंज, मांग, चांडाल, महार को जीवित ही नींव में गाडना, ब्राह्मणों में पुनर्विवाह का निषेध, क्षत्रिय अर्भकों की हत्या, परभु, रामोशी, जिगनर, आदि लोग, पराभूत होने के कारण परशुराम ने आत्महत्या की, तथा चिरंजीव परशुराम को आमंत्रण, इत्यादि के विषय में ....

धोंडीबा : प्रजापति के निधन के बाद ब्राह्मणों का नेता कौन बना?

जोतीराव : परशुराम नेता बना.

धोंडीबा : परशुराम का स्वभाव कैसा था?

जोतीराव : वह स्वभाव से उपद्रवी, साहसी, दुष्ट, निर्दयी, मूर्ख तथा अधम था. अपनी जन्मदात्री माता रेणुका का सिर काट देने में वह तिलमात्र भी हिचकिचाया नहीं. उसका शरीर बहुत बलवान् था, साथ ही वह कुशल धनुर्धारी भी था.

धोंडीबा : उसके शासन-काल में क्या हुआ?

जोतीराव : प्रजापति की मृत्यु के साथ ही बचे हुए महाअरियों ने अपने बंधुजनों को ब्राह्मणों की दासता से मुक्त कराने के लिए परशुराम के साथ इक्कीस बार डटकर युद्ध किये. यह युद्ध इतने प्रबल थे कि अन्त में महा + अरियों का नाम "द्वैती" पड गया. आगे इसीका अपभ्रंश "दैत्य" हो गया. जब परशुराम ने कुल महाअरियों का पराभव किया, तब उनमें से कई महावीरों ने निराश होकर अपने स्नेही जनों के प्रदेश में जाकर जीवन के अन्तिम दिन बिताये. अर्थात् जैसे जेजुरी के खंडेराव (खंडोबा) ने रावण का आश्रय पाया, उसी प्रकार नौ खंडों के "न्यायी" अधिकारियों ने तथा सात आश्रयितों ने कोंकण प्रदेश के तलहटी वाले प्रदेश में जाकर छिपकर अपने जीवन का अन्तिम समय गुजारा. तब ब्राह्मणोंने केवल तिरस्कार एवं धिक्कार की भावना से नौ खंडों के न्यायी को एक

स्त्रीवाचक नाम दे डाला – "नौ खंडों की जाणाई" तथा सात आश्रयों का नाम हो गया – साती आसरा". परशुराम ने जितने महाअरियों को युद्ध में बंदी बना लिया था, वे फिर कभी ब्राह्मणों के विरुद्ध खड़े न हो सकें, इसलिए उनसे शपथ वचन लेकर उन सबके गले में एक काला सूती डोरा *निशानी के रूप में बाँध दिया. साथ ही यह भी निषेध-नियम बना दिया कि शूद्र बंधु जन भी उन काले डोरे वालों को छुएँ नहीं. इसके बाद परशुराम ने उन महाअरि क्षत्रियों को अतिशूद्र, महार, अन्त्यज, मांग और चांडाल कहने की रुढि चला दी. उन्हें पीडित करने की, उन्हें यातना देने की उसने ऐसी प्रथा चलाई कि इस संसार में वैसी उस जैसी जघन्य कपट-गाथा सुनने कहने को भी नहीं मिलेगी. उदाहरणार्थ : उस निर्दयी ने महार, मांग जाति के लोगों से बदला लेने के लिए यह किया कि अपने लोगों के लिए बनाये जा रहे भवनों की नींव में मांग जाति के कई लोगों को उनकी पत्नि यों सहित खडा करके उन्हें जीते-जी गाड देने की प्रथा शुरू की. उनकी करुणा भरी चीख पुकार को देखकर कहीं किसी को दया ना आ जाय, ऐसा सोचकर उस मांग व्यक्ति के मुख में तेल और सिन्दूर भर दिया जाता था, ताकि वह चीख भी न सके. जैसे जैसे मुसलमानों का प्रभाव बढता गया, यह क्रूर प्रथा अपने-आप बन्द हो गयी. किन्तु उधर महाअरियों से लडते-लडते परशुराम के इतने लोग मारे गये कि ब्राह्मणों में पुरुषों की अपेक्षा ब्राह्मण विधवाओं की संख्या ही अधिक हो गयी. उन विधवाओं की कोई उचित व्यवस्था क्या और कैसे की जाय, यह एक कठिन समस्या आ खड़ी हुई. अन्त में जब ब्राह्मण स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह बिलकुल निषिद्ध कर दिया गया, तब जाकर मार्ग थोडा सरल-सीधा हो गया. अपने ब्राह्मण जनों की हत्या के कारण परशुराम क्रोध के मारे इतना पागल हो उठा कि बाणासुर के राज्य के सारे क्षत्रियों को विनाश करने की दृष्टि से उसने अन्त में महाअरि क्षत्रियों की आश्रयहीन गर्भवती स्त्रियों को, जो बेचारी जहाँ-तहाँ अपने प्राण बचाये छिपी बैठी थीं, परशुराम ने उन्हें पकड़ लाने का झोंक-झपट्टा शुरू कर दिया, ताकि उन गर्भवती नारियों के पेट से जन्मने वाले शिशुओं को पैदा होते ही मार डाला जा सके. इन झपट्टोंसे केवल भाग्यवश जो कुछ बच्चे बच पाये, उनसे बाद में उत्पन्न हुए कुछ वंश आजकल परभु लोगों के समाज में मिलते हैं. इसी प्रकार परशुराम

---

* इसी प्रकार "भराडी" की तूमडी पर तथा "वाघ्या" को काला डोरा है वह भी देखो.

के धुआँधार हमले में *रामोशी, *जिनगर, *तुंबडीवाले, कुम्हार आदि जाति के लोग भी फँस गये होंगे. क्योंकि कई रीत-रिवाजों में इन जातियों की शूद्रों से समानता है. तात्पर्य यह कि हिरण्याक्ष से लेकर बलिराजा के *पुत्रोंका वंश नाश होने तक उन सारे कुलों का अस्तित्व मिटाकर, उन लोगों की राख-भसम बनाकर मिट्टी में मिला दी. इससे परिणाम यह हुआ कि शेष सारे अज्ञानी क्षेत्रपतियों के मन पर ऐसा प्रभाव जम गया कि अवश्य ही ब्राह्मण लोग जादू-मंत्र विद्या में अति प्रवीण हैं. इस भय से वे क्षेत्रपति ब्राह्मणों के मंत्रों से बहुत भयभीत रहने लगे, किन्तु उधर परशुराम की मूर्खता के कारण उपद्रवों में ब्राह्मणों की भी बहुत हानि हुई. इस कारण सब ब्राह्मण उसके नाम से कहीं-कहीं कोलाहल मचाने लगे, तो कहीं नहीं, ऐसी स्थिति बनी. तभी यह हुआ कि एक क्षेत्रपति के रामचन्द्र नामक पुत्र ने राजा जनक की राजसभा में परशुराम का धनुष्य तोड डाला. यह घटना परशुराम के मन में चुभी रह गयी. जब उसने जाना कि रामचन्द्र जानकी को लेकर अपने घर जा रहा है, तो अवसर पाकर उसने रामचन्द्र को मार्ग में ही जा पकडा और उससे युद्ध किया. इस युद्ध में परशुराम का ऐसा पराभव हुआ कि वह बुरी तरह लज्जित हो उठा. इसी खीझ में उसने अपने परिवार को और कुछ थोडे से लोगों को साथ लिया और वह कोकण प्रदेश की तलहटी में जा बसा. वहाँ उसे अपने पहले किये कर्मों पर इतना पश्चाताप होने लगा कि अन्तमें उसने आत्महत्या कर ली. आत्महत्या कहाँ, कब और कैसे की, इसका पता उसने किसीको लगने नहीं दिया.

धोंडीबा : सब बाम्हन अपने ग्रंथों के आधार पर कहते हैं कि परशुराम आदिनारायण का अवतार है, वह चिरंजीवी है, उसकी कभी मृत्यु नहीं होगी. और आप तो कहते हैं कि परशुराम ने आत्महत्या कर ली. भला यह कैसे?

---

* रामोशी – ग्राम का पहरा देने वाली जाति.

* जिनगर – जीनसाज.

* तुंबडीवाले – तूमडीवाले, सँपेरे.

* बाणासुर की उषा नामक कन्या कृष्ण के प्रद्युम्न नामक पुत्र से ब्याही गई थी.

जोतीराव : दो वर्ष पहले मैंने जो शिवाजी का पँवाडा * लिखा है, उसके पहले अभंग (पद) में मैंने ब्राह्मणों के नाम यह लिख भेजा था कि "सब बाम्हन अपने परशुराम को बुलाकर मेरे सामने ले आवें. मैं उसे साक्षी बनाकर प्रमाणित कर दूँगा कि आज जो माँग, महार जाति के लोग हैं, उनके पूर्वज ही परशुराम से इक्कीस बार युद्ध करने वाले "महाअरि" क्षत्रिय थे. "इस विषय की सूचना मैंने अपने अभंग द्वारा बाम्हनों को लिख भेजी थी, किन्तु वे परशुराम को बुलाकर नहीं लाये, अब यदि परशुराम वास्तव में आदिनारायण का अवतार होता और अमर होता, तो बाम्हन उसे कहीं से भी ढूँढकर अवश्य ले आते और फिर मुझे तो क्या, सारे जगत् के ईसाई और मुहम्मदी लोगों को भी निश्चय करा देते तथा अपने विश्वास के अनुसार बाम्हनों ने अपनी मंत्रविद्या के बल से सारे म्लेच्छों का विद्रोह दबाने में भी कोई कसर ना छोड़ी होती.

धोंडीबा : मेरा तो कहना है कि आप परशुराम को फिर एक बार भुला भेजें. वह यदि सचमुच जीवीत होगा, तो आपके बुलाने पर अवश्य आयेगा. कारण यह कि आजकल के पंडित चाहे कितना भी कहा करें कि वे "विविधज्ञानी" हैं तथापि परशुराम के विचार से तो वे सब भ्रष्ट ही कहलायेंगे. इस बारे में प्रमाण यह है : आजकल कई ब्राह्मण ऐसे हैं, जो शास्त्रसम्मत करेला खाना छोडकर शास्त्रनिषिद्ध माली की उपजायी गाजरें खाने का सपाटा लगाये हैं गाजरें खाते तो हैं किन्तु चोरी छिपे और चुपके-चुपके.

जोतीराव : अच्छा, ठीक है, वही सही, यह पत्र लिखा है. चिरंजीव परशुराम उर्फ आदिनारायण के अवतार के नाम – पता : सर्वत्र सबठाईं. अरे बडे भैय्या परशुराम, ब्राह्मणों के ग्रंथों में तुझे चिरंजीवी बताया है. तूने कटु ही सही, परन्तु विधिपूर्वक करेले खाने का धिक्कार नहीं किया. जैसे तूने पहले कोली के शव से दूसरे नये ब्राह्मण उत्पन्न कर दिये थे, वैसे अब नहीं करने पडेंगे. क्योंकि तूने पहले जिन ब्राह्मणों को शव से उत्पन्न किया था, उनमें से कई ब्राह्मण आज के युग में "विविध ज्ञानी" बन बैठे हैं. उन्हें और अधिक ज्ञान सिखाने की आवश्यकता तुझे नहीं होगी. बस,

---

* अभंग : अति महारथी क्षत्रिय का बालक ।। यवनों का काल त्रेतायुग में ।। 1 ।। शूर स्वभाव, जूझता रण में ।।लड भिड पडे देश के हित में ।। 2 ।। परशुराम से भिडा महाबली ।। बार इक्कीस सतत निरन्तर ।। 3 ।। नाम वीरों का था महा अरि ।। काँपते थे थरथर द्विजपुत्र भी ।। 4 ।।रण में हारने पर कहा अछूत उन्हें ।। कहा मांग महार उन्हें ही ।। 5 ।। कायर ने लिया बदला विजित शत्रु से ।। जानों कृतघ्न साँप का पूत है ।। 6 ।। कहते उसे तुम चिरंजीव, तो ।। लाओ पकड जोती के सम्मुख ।। 7 ।।

तू यहाँ आ जा और उन्होंने शूद्रों की उपजायी गाजरें जो खा ली हैं, इस कारण उनसे तू चान्द्रायण प्रायश्चित करा लें और अपने वेदमंत्र की जादू विद्या के बल से अंगरेज, फ्रांसीसी आदि लोगों को आज फिर से वही चमत्कार कर दिखला. बस, इतना ही पर्याप्त है. तू इस तरह मुँह छिपाकर छिपता भागता मत रह. इस नोटिस की तारीख से ठीक छः महीने के भीतर यदि तू हाजिर हो गया, तो मैं तो क्या, कुल संसार के सारे लोग तुझे सर्वसाक्षी आदिनारायण का अवतार मानकर सम्मान देंगे. और यदि तूने ऐसा ना किया, तो यहाँ के माँग-महार लोग हमारे म्हसोबा देवता के पीछे लुककर बैठे तेरे विविध ज्ञानी कहलानेवाले ब्राह्मण-पुत्रों को खींचकर सामने लावेंगे और बहुत अपमान किये बिना न रहेंगे. फिर यह होगा कि उनके "इकतारे" की तार टूट जायेगी और उनकी झोली में केवल पत्थर कंकड ही गिरेंगे. बस उन पर भूख के मारे विश्वामित्र के समान कहीं कुत्ते की हड्डी खाने ** की बिपत ना आ पडे. ऐसी बिपत्ति उन पर मत आने दे भैय्या.

तारीख अगस्त की 1 ली
सन् 1872 ईस्वी पुणे,
जुना गंज, घर नं. 527.

आपकी सचाई का परखैया
जोतीराव गोविंदराव फुले.

□ □

---

* अथवा "पानशेंगा" – पानी की फली.

भाग नववाँ

वेदमंत्र, जादू का प्रभाव, मूठ चलाना, मन्दिर का गर्भगृह गुँजाना, जप, चार वेद, ब्रह्म घोटाला, नारदशाही, नवीन ग्रंथ, शूद्रों को विद्या देने का निषेध, भागवत तथा मनुसंहिता की असंगति, इत्यादि के विषय में ....

धोंडीबा : आपने तो बात कहीं की कहीं पहुँचा दी. अच्छा आगे कहिये. आपके कहे अनुसार परशुराम मर गया और मिट्टी में मिल कर मिट्टी हो गया. चलिए, वही सही. परन्तु शेष सारे क्षेत्रपतियों के मन पर ब्राह्मणों के मंत्रोंका प्रभाव क्योंकर हुआ? यह तो कहिये.

जोतीराव : वह इस प्रकार कि उस काल में बाम्हन-पंडित प्रत्येक शास्त्र पर मंत्र विधि करके उसमें अस्त्र की शक्ति उत्पन्न किये बिना शत्रु पर नहीं छोडते थे. जब उन्होंने ऐसे-ऐसे विविध प्रकार के प्रयत्न करके बाणासुर को, उसके राज्य को और उसकी प्रजाको इस प्रकार धूल में मिला दिया, तो स्वभावतः शेष सारे भोले-भाले क्षेत्रपतियों के मन पर ब्राह्मणों का भय बैठ गया. इसका उदाहरण : भृगु नामक ऋषि ने जब विष्णु की छाती पर लात मारी, तब विष्णु (उनके मतानुसार आदिनारायण) ऋषि के पाँव दुखते होंगे, ऐसा सोचकर ऋषि के पाँव दबाने लगा. अब इस कथा का हेतु या भावार्थ केवल स्वार्थ मात्र है. वह इस प्रकार कि जब साक्षात् आदिनारायण विष्णु ने ब्राह्मण की लात खाकर उनके पाँव दबाये, तब हम जो शूद्रजन (उनके मत में क्षुद्र प्राणी) हैं, उन्हें तो ब्राह्मण के लात-घूँसे खाकर भी, चाहे प्राण जाते हों, तो भी चूँ तक नहीं करनी चाहिये.

धोंडीबा : तो फिर आज के नीच जनोंके पास जो थोड़ी बहुत जादूमंतर की विद्या दिखाई देती है, वह उन्होंने कहाँ से पायी होगी?

जोतीराव : आज के लोगों के पास जो मूठ मारने की, मोहिनी फैलाने की बंगाली जादूमंत्रविद्या है, वह उन्होंने वेदों की जादूमंत्रविद्या से नहीं ली होगी, ऐसा तो कोई कह नहीं सकेगा. क्योंकि अब यद्यपि आजकल उसमें बहुत परिवर्तन हो गया है और बहुतसा अपभ्रंश भी हुआ है, फिर भी उस विद्या के बहुत से मंत्रों में और तंत्रों-यंत्रों में ओम् नमो, ओं नमः,

ओं ह्लीं, ह्लीं नः आदि वेदमंत्रों का बहुत बडा भाग भरा मिलता है. इससे प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों के मूल पूर्वजोंने इस देश में आकर पहले बंगाल में बस्ती बनायी होगी. वही उनकी मंत्र विद्या चारों ओर फैल गयी और उसका नाम बंगाली विद्या पड गया होगा. यही नहीं, आर्योंके पूर्वज आज के अज्ञानी जनों के समान मंदिर का गर्भगृह गुँजाने की विद्या भी जानते थे. क्योंकि पहले काल में गर्भगृह गुँजाने वाले को ही ब्राह्मण कहते थे. वे लोग सोमरस नामक मदिरा पीकर उसके मद में कुछ-कुछ बड़बड़ाते थे और कहते थे "देवता हमसे बोलता है." ऐसा कहकर अनाडियों को ठगते थे. ऐसा उनके वेदों से *ही सिद्ध होता है. उसी विद्या के आधार पर आज के इस सुधारक युग में भी ब्राह्मण भट्ट अपना पेट भरने कों जप, अनुष्ठान, जादू-मंत्र विधि करके अज्ञानी माली, कुनबी लोगों को ठगते-फँसाते हैं. किन्तु उस बेचारे अभागे हतभागी को उस मदारी की चालाकी खोज निकालने की फुरसत ही नहीं है. क्योंकि दिनभर खेत में, मर-खपकर अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण करते करते और सरकारी लगान देते-देते ही उसकी नाक में दम आ जाता है.

धोंडीबा : तो फिर ब्राह्मण जो बडे गर्व से कहते हैं कि चार वेद ब्रह्मा के मुख से प्रकट हुए, इस कथन में बाधा आती है.

जोतीराव : यह सब असत्य है. क्योंकि यदि उनका कहना सच मानें, तो फिर ब्रह्मा की मृत्यु के बाद भी अनेक ब्रह्मर्षियों अथवा देवर्षियों के बनाये हुए सूक्त ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न वेदों में कैसे आ गये? इसी प्रकार यह भी सिद्ध नहीं होता कि चारों वेदों की रचना एक ही लेखक ने एक ही समय में की है. कई यूरोपियन परोपकारी ग्रंथकारों ने यही सिद्ध कर दिखाया है.

धोंडीबा : ब्राह्मणोंने यह ब्रह्मघोटाला किया भी, तो कब किया?

जोतीराव : ब्रह्मा की मृत्यु के बाद कई ब्रह्मर्षियों ने उसके लेख के तीन भेद अर्थात तीन वेद बना दिये. उसके बाद अनेक ब्रह्मर्षियोंने उनमें कई प्रकार के परिवर्तन किये और उन्हें जो उलटी-सीधी कथाएँ ज्ञात थीं, उन कथाओं पर उन्होंने उसी नमूने की कविताएँ रच डालीं और एक नया चौथा वेद तैयार कर डाला. इसी समय परशुराम ने बाणासुर के प्रजाजनों की बडी छीछालेदार की, इससे सारे क्षेत्रपतियों के मन पर ब्राह्मणों के वेदमंत्र

---

* कई यूरोपियन ग्रंथकारो का मत है.

भाग दसवाँ

दूसरा बलिराजा, ब्राह्मणधर्म की दुर्गति, शंकराचार्य कृत्रिम, नास्तिक मत, निर्दयता, प्राकृत ग्रंथकार, कर्म तथा ज्ञान मार्ग, बाजीराव, मुसलमानों से द्वेष तथा अमरीकन एवं स्कॉच उपदेशकों ने ब्राह्मणों का कृत्रिम दुर्ग ढहाया, इत्यादि के विषय में ....

धोंडीबा : अब तो आपने सचमुच कमाल कर दिया. क्योंकि आपने शिवाजी के पँवाडे की प्रस्तावना में लिखा है ना कि चार घरों की बाम्हन ग्रंथकारों की चार कन्याएँ घर के चौक-आँगन में झूठा-बनावटी खेल खेला कीं और खेल ही खेल में उन्होंने ऐसी बेसिर पैर की बातें गढ मारी हैं. आपके इस कथन से भी वही बात सत्य सिद्ध होती है.

जोतीराव : किन्तु आगे जाकर दीनों का दयालु, महापवित्र, सत्यज्ञानी सत्यवक्ता एक दूसरा बलिराजा इस संसार में उत्पन्न हुआ. उसने हम सबके जन्म देने वाले, सब पिताओं के उस महापिता परमेश्वर की इच्छा को चित्त में धारण किया तथा हम सब उसके दिये हुए सत्यमय पवित्र ज्ञान का तथा अधिकार का समानता से उपभोग कर सकें, इस हेतु से उसने ऐसा किया कि ढोंगी, दुष्ट तथा स्वार्थी बाम्हन शिकारियों की गुलामी से अपने दीन-दुर्बल भाईयों को, पीडित-शोषित जनों को मुक्त करा दिया. ऐसा लगता है कि इस प्रकार उसने ईश्वर का राज्य स्थापित करना आरंभ किया और इस भाँति उसने अपनी महान् बड़ी स्त्रियों की भविष्यवाणी पूरी कर दिखाई. अरे, मिस्टर टॉमस पेन्स जैसे महान विद्वान् पूर्वजोंने भी इस नूतन बलिराजा की शरण में आकर अपने पीछे लगी सारी आधि-व्याधि दूर कर ली और सुख पाया. परन्तु अन्त में जब उस बलिराजा को चार दुष्टों ने सूली पर चढा दिया तब तो सारे यूरोप खंड में बड़ी उथल-पुथल मची. करोड़ों लोग उसके मतानुयायी हो गये और अपने उत्पत्तिकर्ता की कामना के अनुसार इस जगत् में केवल उसका ही राज्य लाने के लिए वे सब रात-दिन जी-जान से परिश्रम करने लगे. ऐसी दशा में कुल मिलाकर इस देश में भी थोड़ा सुख-चैन मिला. साथ ही यहाँ के कई बुद्धिमान् बलिराजाओं ने भी लड़कियों के उस चौक-आँगनवाले बनावटी ढोंगी खेल-खिलवाड़ की बड़ी दुर्गत बनायी. अर्थात् सांख्यमुनि

जोतीराव : हाँ, यही सत्य है क्योंकि मनु ने अपने ग्रंथ के आठवें अध्याय के 110 वे श्लोक में यह उदाहरण दिया है कि भागवत के वशिष्ठ ने सुदामन राजा के सामने यह शपथ ली कि "खून मैंने नहीं किया". यदि मनुसंहिता बाद की न होती, तो उसमें यह बाद कैसे लिखी होती? उसी प्रकार उसी ग्रंथ के दसवें अध्याय के 108 वें श्लोक में यह उपमा कैसे दी जाती कि विश्वामित्र ने आपत्तिकाल में कुत्ते की हड्डी खायी थी? इसके अतिरिक्त उस पुस्तक में ऐसी ही अनेक विरोधी बातें जो मिलती हैं, सो अलग.

□ □

भाग दसवाँ

दूसरा बलिराजा, ब्राह्मणधर्म की दुर्गति, शंकराचार्य कृत्रिम, नास्तिक मत, निर्दयता, प्राकृत ग्रंथकार, कर्म तथा ज्ञान मार्ग, बाजीराव, मुसलमानों से द्वेष तथा अमरीकन एवं स्कॉच उपदेशकों ने ब्राह्मणों का कृत्रिम दुर्ग ढहाया, इत्यादि के विषय में ....

धोंडीबा : अब तो आपने सचमुच कमाल कर दिया. क्योंकि आपने शिवाजी के पँवाडे की प्रस्तावना में लिखा है ना कि चार घरों की बाम्हन ग्रंथकारों की चार कन्याएँ घर के चौक-आँगन में झूठा-बनावटी खेल खेला कीं और खेल ही खेल में उन्होंने ऐसी बेसिर पैर की बातें गढ मारी हैं. आपके इस कथन से भी वही बात सत्य सिद्ध होती है.

जोतीराव : किन्तु आगे जाकर दीनों का दयालु, महापवित्र, सत्यज्ञानी सत्यवक्ता एक दूसरा बलिराजा इस संसार में उत्पन्न हुआ. उसने हम सबके जन्म देने वाले, सब पिताओं के उस महापिता परमेश्वर की इच्छा को चित्त में धारण किया तथा हम सब उसके दिये हुए सत्यमय पवित्र ज्ञान का तथा अधिकार का समानता से उपभोग कर सकें, इस हेतु से उसने ऐसा किया कि ढोंगी, दुष्ट तथा स्वार्थी बाम्हन शिकारियों की गुलामी से अपने दीन-दुर्बल भाईयों को, पीडित-शोषित जनों को मुक्त करा दिया. ऐसा लगता है कि इस प्रकार उसने ईश्वर का राज्य स्थापित करना आरंभ किया और इस भाँति उसने अपनी महान् बड़ी स्त्रियों की भविष्यवाणी पूरी कर दिखाई. अरे, मिस्टर टॉमस पेन्स जैसे महान विद्वान् पूर्वजोंने भी इस नूतन बलिराजा की शरण में आकर अपने पीछे लगी सारी आधि-व्याधि दूर कर ली और सुख पाया. परन्तु अन्त में जब उस बलिराजा को चार दुष्टों ने सूली पर चढा दिया तब तो सारे यूरोप खंड में बड़ी उथल-पुथल मची. करोड़ों लोग उसके मतानुयायी हो गये और अपने उत्पत्तिकर्ता की कामना के अनुसार इस जगत् में केवल उसका ही राज्य लाने के लिए वे सब रात-दिन जी-जान से परिश्रम करने लगे. ऐसी दशा में कुल मिलाकर इस देश में भी थोड़ा सुख-चैन मिला. साथ ही यहाँ के कई बुद्धिमान् बलिराजाओं ने भी लड़कियों के उस चौक-आँगनवाले बनावटी ढोंगी खेल-खिलवाड़ की बड़ी दुर्गत बनायी. अर्थात् सांख्यमुनि

जैसे विवेकशील सत्पुरुष ने ब्राह्मणों के वेदमंत्र और जादूविद्या से मन्दिर गुँजाना, पशुओं की हत्या करना जैसी विधियों की पोल खोल दी. साथ ही सांख्यमुनिने मेले तमाशों के बहाने गोमांस खाने वाले, अहंकार, दंभ, स्वार्थ, दुराचार आदि दुर्गुणों से परिपूर्ण बाम्हनों के जादू-टोने से भरे हुए ग्रंथों के मुख पर तेल-काजल लीप-पोत दिया और इस प्रकार अधिकतर बाम्हनों की सुधबुध सुधार उन्हें अपना धर्मानुयायी बना लिया. परन्तु उनमें से कई वितंडवादी पंडित बचकर कर्नाटक प्रदेश में भाग गये. फिर उन लोगों में एक प्रकार की कुतर्कविद्या जानने वाला शंकराचार्य नामक महापंडित उत्पन्न हुआ. उसने जब देखा कि ब्राह्मणजाति के दुष्कर्मों की सर्वत्र निन्दा हो रही है, अपमान हो रहा है और बौद्धधर्म का प्रसार होता जा रहा है, तो ऐसी दशा उससे देखी न गयी. उसने यह भी पाया कि अपने लोगोंका उदरनिर्वाह ठीक से नहीं होता. तब उसने सोचा कि जिन दुर्गुणों-दुष्कर्मों के कारण बौद्ध लोगों ने वेदोंसहित सारे ग्रंथों का धिक्कार और पराभव किया था, उन दुष्कर्मों को दूर किया जाय. वह समस्त दोष तो दूर नहीं कर पाया, हाँ गोमांस सेवन, तथा मद्यपान उसने बंद करा दिये. साथ ही उसने सब ग्रंथों में परिवर्तन करके उन ग्रंथों की ओर अधिक पुष्टि करने हेतु अपना एक नया नास्तिक मत चला दिया. उसे ही आज वेदान्त अथवा ज्ञानमार्ग कहते हैं. इसके बाद उसने शिवलिंग की स्थापना की और इस देश में जो तुर्क आकर बस गये थे, उन्हें हिन्दुओंके क्षत्रिय लोगों में मिला लिया. फिर उनकी सहायता से जैसे मुसलमान नें तलवार के बल पर विजय पाई थी, उसी प्रकार उन क्षत्रिय बने तुर्कों की सहायता से बौद्ध लोगों का पराभव किया और अपनी शेष मंत्रविद्या का तथा भागवत की व्यर्थ दंतकथाओं का प्रभाव अज्ञानी शूद्रों के मन पर बैठा दिया. शंकराचार्य के इन तीव्र उपद्रवों में उसके लोगों ने अनेक बौद्धों को तेली के कोल्हू में पीसकर मारा और उनके बहुत से श्रेष्ठ ग्रंथों को जला डाला. उन ग्रंथों में से उन्होंने केवल अमरकोष ग्रंथ अपने उपयोग के लिए अपने पास रख लिया. इसके बाद शंकराचार्य के दिवाभीत शिष्य किसी आराध्य भक्त के समान दिन में भी मशालें जलाकर और पालकी में बैठकर किसी * " विठ्ठल सुवासिनी " की भाँति " स्नातपूत " अस्पृश्य बनकर जिधर-उधर नाचने फिरने लगे. तभी दूसरी ओर मुकुंदराज, ज्ञानेश्वर, रामदास जैसे " चवन्नी के पंद्रह और अठन्नी के सोलह " जाने कितने ही बाह्मण ग्रंथकार भी हुए, किन्तु सारे के सारे व्यर्थ हुए. क्योंकि इनमें से एक ने भी शूद्रों के गले में बँधे हुए पट्टे

---

* तीर्थस्थान की सिरमुँडी विधवा भक्तिन.

को खोलना तो दूर, उसे उंगली से छुआ भी नहीं. कारण यह कि अपने कुल सारेशेष दुष्ट कर्मों को स्पष्ट रुप से छोड़ने का साहस भी उनमें नहीं आ पाया. परिणामतः उन सब दुष्टकर्मों को कर्ममार्ग कहकर और नास्तिक मत को ज्ञानमार्ग नाम देकर इन दो भेदों के विषय में देश-भाषा के ढेरों-ढेर थोथे ग्रंथ लिख डाले और इस भाँति अपनी स्वार्थी जाति को अवसर दे डाला कि वह अज्ञानी शूद्रों को लूट-खसोटकर खाती रहे. आगे चलकर रोज़ रात को न जाने कितने ही लज्जास्पद दुष्कर्म दुराचरण करने वाले बाम्हन दिन निकलते ही यह कहने लगे कि जब तक सवा प्रहर दिन ना चढआवे, मुसलमान का मुख भी न देखे. वही मुसलमान जो केवल अपने पैदा करने वाले की ही भक्ति करता है. उसका मुख देखना भी पाप बना दिया. ऐसे " सोवळे " रजस्वलानारी के समान अस्पृश्य बने बैठे " स्नातपूत " बाजीराव की संगीतसभा के अन्त में आदि भैरव राग का गायन आरंभ हो ही रहा था कि कुल सारे बाम्हनों के इकतारे की तार एकदम टूट गयी और अंग्रेज बहादुर का झंडा चारों ओर फहराने लगा. तब उस बलिराजा के मतावलम्बी कई अमरीकन और स्कॉच धर्मोपदेशक अपनी अपनी सरकारों की कतई परवाह न करके इस देश में चले आये और यहाँ आकर उन्होंने जो सत्य उपदेश दिया, उन उपदेशों ने ढोंगी और बाम्हनों को प्रमाण दिखा दिया, कई शूद्रों को उन्होंने बाम्हनों के छल कपट से भरी दासता से मुक्त कराया और शूद्रों के गले में बँधा गुलामी का पट्टा तोड़कर बाम्हनों के ग्रंथों के मुँह पर फेंक मारा. तब तो लगभग सब बाम्हनोंने मन ही मन जान लिया कि अब ये उपदेशक शूद्रों पर हमारी कृत्रिम प्रभुता बिलकुल नहीं बने रहने देंगे. इस भय की आशंका से भट्ट-बाम्हनों ने नाना प्रकार के विचार और युक्तियाँ सोचनी शुरु कर दी. उन्होने सोचा-बलिराजा के मतानुयायी उपदेशकों का और अज्ञानी शूद्रोंका घनिष्ठ मेल मिलाप होने से पहले ही, उन दोनों की पूरी निकटता या पहचान होने से पहले ही उन बलिराजा के मतानुयायी उपदेशकों को और अंगरेज सरकार को भी इस देश से भगा देना चाहिये. इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर उनमें से कईयों ने अपनी पीढी-दरपीढी चली आ रही ठगविद्या के बल पर अज्ञानी शूद्रों को उपदेश कर करके उनके मन में अंगरेज सरकार के प्रति द्वेषभाव भरने का तेज़ झपट्टा शुरु कर दिया *और शेष बाम्हनों में से कोई क्लर्क बना, कोई कुछ बना, तो कोई कुछ. इस प्रकार अनेक व्यवसायों में वे घुस गये. कुल मिलाकर यह कि एक भी ऐसा सरकारी विभाग अथवा घरेलू व्यवसाय नहीं मिलेगा कि जिसमे बाम्हन जी ना भरे पडे हों.

□ □ □

---

* उमाजी रामोशी तथा नाना.

भाग ग्यारहवाँ

पुराण बाँचना, विद्रोह आदि परिणाम, शूद्र राजा-रजवाडे, कुलकर्णी, सरस्वती की प्रार्थना, जप, अनुष्ठान, देवस्थान, दक्षिणा, बडे-बडे उपनामों की सभाएँ इत्यादि के विष्य में ....

धोंडीबा : क्या कहा आपने? यही ना कि इन अधर्मी पंडित जादूगारों के मूल पूर्वजों ने इस देश में आकर यहाँ के मूल निवासी हमारे पूर्वजों को पराजित करके दास बना लिया और अपने कलाई-भुजाओं के बल को ही प्रजापति बनाकर अपने ऊधम-उपद्रवों के धर्म का बहुत बोलबाला किया. ऐसा करके उन्होंने बहुत महान् पुरुषार्थ किया, ऐसा तो मैं नहीं कह सकता. किन्तु यदि ऐसा हुआ होता कि हमारे पूर्वजों ने भट्टजनों के पूर्वजों को हराया होता, तो क्या हमारे पूर्वजों ने अपनी कलाई-भुजाओं को लिंग बनाकर बाम्हनों के पूर्वजों को दास बनाने में कोई कसर छोड़ी होती क्या? अच्छा-जाने दीजिए. आगे चलकर बाम्हनों ने अपने पूर्वजों के उपद्रवों-उत्पातों को ही अवसर पा कर ईश्वरप्रदत्त धर्म का रूप दे डाला और उस कृत्रिम धर्म की आड़ में छिपकर अनेक बाम्हनों ने सारे अज्ञानी शूद्रों के मन में हमारी कृपालु अंगरेज सरकार के विषय में द्वेषभाव भरने की युक्ति सोच निकाली, भला वह कौनसी है?

जोतीराव : कई ब्राह्मणों ने चौक-चौराहे के महावीरों के मन्दिरों में रात रात बैठकर धार्मिकता का बड़ा ढोंग रचाया. ऊपर से तो यह कि बड़ा ज्ञान कहा जा रहा है, किन्तु भीतर से यह कि भागवत जैसे ग्रंथों की झूठी-खोटी कहानियों वाले पुराण बाँचने लगे और शूद्रों के मन को बहुत भ्रष्ट कर दिया और ऐसी-ऐसी पाटी पढायी कि वे शूद्र बलिराजा के लोगों की छाया से भी दूर रहें. इतना सब करके फिर वे चुप बैठे रहे क्या? ना जी ना, उन्होंने मौका पाकर उन्ही पोथियों की बेकार दंतकथाएँ सुना-सुनाकर सारे अज्ञानी लोगों के मन में अंगरेजी राज्य के प्रति द्वेष भावना भर दी. इस प्रकार उन्होंने इस देश में क्या बड़े बड़े विद्रोह नहीं करवाये हैं?

धोंडीबा : हाँ, सच है. क्योंकि आज तक जितने भी बड़े-बड़े विद्रोह हुए हैं, उनमें अन्दर से बाहर से मुख्य अगुआ कौन था? केवल बाम्हनजी ही थे. देख लो-उमाजी रामोशी ने विद्रोह किया, तो उसके पीछे था धोंडोपंत बाम्हन-कि जिसे काले पानी की सज़ा हुई. इसी प्रकार " बडी चपाती " वाले गुप्त विद्रोहके पीछे भी परदेशी भटपांडे, कोंकण का नाना और तात्या टोपे आदि कई सारे देशस्थ बाम्हन महोदय ही मिलते हैं.

जोतीराव : दूसरी ओर यह भी देख कि शिंदे, होलकर, आदि शूद्र राजा, जो नौकरी के नाते से नाना के निकटवर्ती थे, उन्होंने उस विद्रोह की तनिक भी परवाह नहीं की और उस भीषण संकट में भी उन्होंने अंगरेज सरकार की कितनी सहायता की. ख़ैर. ब्राह्मणों द्वारा उकसाये गये उस विद्रोह को दबाने के लिए हमारी सरकार पर बहुत कर्ज़ा हो गया, सो ठीक है, किन्तु वह कर्ज़ा चुकाने के लिए चाहिये तो यह था कि हमारी सरकार सबसे पहले *पर्वती जैसे निरर्थक संस्थानों से वह कर्ज़ा पूरा करे, किन्तु हमारी सरकार ने नया कर किस पर लगाया? प्रजाजनों में दोषी अथवा निर्दोष जैसा कोई भेदभाव न करके नया कर सारी प्रजा पर लगाया. यह भी ठीक किया, किन्तु बेचारे नासमझ शूद्रों पर यह कर निश्चित करने का काम हमारी सयानी-समझदार सरकार ने किसे सौंपा? बाम्हन कुलकर्णी को–कि जो भीतर ही भीतर तड़पता-कुढता और जलता था कि उन शूद्र राजाओं ने उनकी जाति के नाना की समय पड़ने पर सहायता नहीं की थी. इसलिए शूद्र राजाओं पर फागवाली गालियाँ वरसाने वाले, दिन में तीन बार नहा-धोकर पावन बनने वाले, द्रव्यनिष्ठ ना ना, भूल हो गयी, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण कुलकर्णी को कर लगाने का काम सौंपा. अरे, उस मूल ब्रह्मराक्षस ने जब से इस करम फूटे ग्रामराक्षसों को सरकारी कार्यालय का काम सौंपा है ना, उस दिन से उन्होंने शूद्रों का पीछा नहीं छोड़ा है. कुछ समय पहले एक बार मुसलमान राजाओं ने गाँव के पशु-पक्षियों के गले काटकर हलाल करने का काम अपनी जात के *मुलानी को सौंपा था, किन्तु इस चतुर भट्टजी ने लेखनी से ही ऐसा गला काटा है कि मुलानी भी शरमा जायँ. इसी कारण लोगों ने यह प्रतीक्षा नहीं की कि सरकार इस " ग्रामराक्षस " को कोई उपाधि दे. लोगों ने ही स्वयमेव इस ग्रामराक्षस को " कलम-कसाई " पदवी दे डाली और वह पदवी आज भी चालू है. किन्तु

---

* पर्वती – पुणे नगर के बीच पर्वत पर स्थित एक बडा मन्दिर संस्थान.

* मुलानी – मुसलमान कसाई.

अपनी यह सयानी सरकार अन्य कर्मचारियों के समान इनकी बदली तो करती नहीं, उलटे उनकी सम्मति लेती है और अज्ञानी लोगों पर कर लगाने का काम और नोटिस देने का काम भी इस कलम-कसाई को ही देती है और आगे भी उसी ब्राह्मण कुलकर्णी को ही सबके घर जाकर नोटिस बाँटने का काम भी सौंपती है. बाद में नोटिस देकर आने वाले कुलकर्णी की सलाह से सरकार उनमें कई नोटिसें तो रद्द कर देती है और अज्ञानी लोगों का कर जैसे का तैसा रहने देती है. अब ऐसे को क्या कहें?

धोंडीबा : परन्तु ऐसा करने से कुलकर्णी को कोई लाभ होता होगा क्या?

जोतीराव : ऐसे व्यवहार से कुलकर्णी को कुछ लाभ होता है या नहीं, यह तो वह जाने या उसका मन. चाहे उसे किसी धींगरे से या फटेहाल से कुछ फायदा ना होता हो, फिर भी ऐसी नोटिसें देकर, कम से कम चार-आठ दिन उसके काम-धंदे का नास करके, दफ्तर के चक्कर लगवा-लगवाकर कुलकर्णी उसे अच्छा-ख़ासा सबक तो सिखा ही देता है ना. इस रीति से लोगों पर अपनी धाक बिठाकर वे धींगरे के काम में तो कौडी-धेला नहीं लेते. बाकी के सारे काम वे बगुले का सा ध्यान धरकर इतनी निष्ठा और शुद्धता से करते हैं कि वाह! सारे निरक्षर आबालवृद्ध शंकराचार्य के समान लक्ष्मी की गहन ध्यान करते, वंदना करते हुए कहते हैं "हे हमारी सरकारी सरस्वती देवी, तू सचमुच धन्य है! तेरे कानून के क्या कहने! तू अडंगा लगाकर घूस माँगने वाला और लाचार होकर घूस देने वाला, दोंनों को एक बराबर दंड देती है. वाह!" तब सुना है कि स्तुति से सरस्वती देवी प्रसन्न हुई और लोग कहते हैं कि उस देवी ने कुलकर्णी के घर पर कई रातों तक सुरती रुपयों की वर्षा की. यदि यह बात सच है, तब तो सरकार का काम है कि इस घटना की जाँच कराये और ऐसे पुण्यशाली भाग्यवंत कुलकर्णी को पालकी में बिठाकर सारे मार्गों में घुमाकर उसका जुलूस निकाले, पालकी न मिले, तो एक घोड़े पर ही बिठावे और गाँवभर उसकी सवारी निकाले! अवश्य निकाले सवारी!

धोंडीबा : अजी, चार बुद्धिमान् व्यक्तियोंने भट्ट महोदयों की ऐसी चेष्टाओं का पता लगाकर बलिराजा के सेनापति के पहरे में रखवा दिया है. किन्तु वे बातें भी अब उन प्रहरियों की नज़र बचाकर ऐसे कलम-कसाईयों पर प्रसन्न होने लगी हैं. परिणाम यह है कि अब कई बाम्हन शूद्रों की पसीने की कमाई से मिले लगान के धन के बल पर बड़े-बड़े विद्वान् बन गये हैं. इसलिए शूद्रों का कृतज्ञ होकर ऋण उतारना तो दूर, उन्होंने दो-चार दिनों तक मनचाही

मौज मनायी. अन्त में स्नान-शुद्धता का विशाल आडंबर खड़ा किया, सारे अज्ञानी शूद्रों के मनपर रोब जमाया कि वेदमंत्र जादूविद्या एकदम सत्य है. शूद्रजन उनके जाल में फँसे रहें, इसलिए बाम्हन जी ने कुछ ऐसा किया कि शादावल के पिछले या अगले लिंग के आगे शूद्रजन सोचने लगे और कहने लगे " देखो, हमने आपस में मिलकर चंदा जमा किया और पुरोहितजी से जप, अनुष्ठान करवाया, तभी तो इस बरस बरखा बड़ी बरसी है और महामारी की मुसीबत भी बड़ी कम आयी है ". फिर पुरोहितजीने जप, अनुष्ठान के अन्तिम दिन एक गाड़ी पर भात का बलि बनाकर सब अनपढ-नासमझ लोगों के आगे बड़ी-बड़ी चिकनी-चुपड़ी गप्पें लगायीं बड़े-बड़े मेले लगवाये, उन लोगों में सबसे पहले अपनी जात के सैकड़ों आलसी पंडितों को यथेष्ट भोज कराया और बाद में बचे-खुचे अन्न से शेष सारे अज्ञानी शूद्रों की पंगतें बिठवायीं सो भी ऐसी कि किसी को केवल मुठ्ठी भर चावल मिला, किसीको केवल दाल ही मिली और कितने बेचारे ऐसे कि उन्हें होलीमें सिकी जैसी सूखी रोटियाँ ही मिलीं. इस तरह सबको खाना खिलाकर तृप्त किया. उनमें से कई पंडित ऐसे हैं कि जिन्होंने अज्ञानीजनों के मन पर वेदमंत्र से जादू की धाक बैठ जाय, इसलिए उपदेश करने की बाढ-सी बहा रखी है. परन्तु यह नहीं समझ आता कि ऐसे अवसरोंपर पंडितजी प्रसाद पाने के लिए अंगरेज लोगों को आमंत्रण क्यों नहीं देते?

जोतीराव : अरे भाई, ऐसे ऐरे-गैरे, नत्थू खैरे इस तरह मुट्ठी भर चावल सामने फेंककर चुमकारकर चुक्-चूक् चाहे कितने ही बाम्हन इकट्ठा कर लें और वे बाम्हन चाहे कितने ही रूद्रपाठ करते हुए भो-भो करें, तो किया करें, किन्तु वे अंगरेज बहादुर को प्रसाद पाने के लिए बुलावें या उन्हें प्रसाद दें, इतना साहस उनमें कहाँ?

धोंडीबा : अच्छा, अब बस कीजिए. " टट्टू को कोड़ा लेकिन तेजी घोड़ी को इशारा काफ़ी " इससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं. इसी बारे में कहावत भी है ना – " दूध का जला छाछ भी फूँक मारकर पीता है. "

जोतीराव : अच्छा, जैसी तेरी इच्छा. परन्तु आजके सुधारक बाम्हन अपनी नकली जादू मंत्रविद्या को और उससे सम्बन्धित जप-अनुष्ठान आदि को जितना चमकाया चाहें, चमकायें और सारे गली-कूचों में क्यों ना चिल्लाते-भौंकते फिरें-उसमें किसी का कुछ बिगड़ता नहीं. किन्तु उनके लोगों में वह पौने आठ वाला बाजीराव भी हुआ है ना कि जिसने अपने स्वामी के ही कुल को सातारा

के गढ में क़ैद कर रखा था. उस नमकहराम बाजीराव ने रात-दिन खेती में मरने खपने वाले अनपढ शूद्रों के मेहनत की कमाई लेकर क्या किया? जानता है तू? उसने ढमढेरे जैसे एक नंबर के जवाँमर्द बाम्हन सरदार को सरंजाम और इनाम दिया. उस इनाम की सनद में इनाम के जो कारण बतलाये गये हैं, उन्हें पढकर तो फर्स्ट सॉर्ट टरक्वांड साहब जैसे पवित्र इनाम कमिश्नर भी खुशी के मारे झूम उठे. फिर दूसरों का तो कहना ही क्या? बाजीराव जैसे भट्टराजोंने क्या किया? पर्वती जैसे कई संस्थान, कई मठ-मन्दिर बनवाये कि जिनमें सब जातियों के अंधों लूले-लंगडों का, रांड बेवाओं का या अनाथ, अबोध बच्चों का तो कोई सोच-विचार किया नहीं, बस अपनी जाति के हट्टे-कट्टे आलसी पंडितों को प्रतिदिन नाना प्रकार के मिष्टान्नमय भोज देने की प्रथा आरंभ कर दी. साथ ही उनकी अपनी स्वार्थ से भरी पोथियों का अध्ययन करने वाले पंडितों को यथासांग वार्षिक दक्षिणा देने की प्रथा भी चला दी. उनकी चलायी हुई यह बनावटी रीतियाँ अपनी सरकारने आज तक चालू रखी हैं. यदि कहा जाय कि ऐसा करके सरकार नें अपनी समझदारी पर और राजनीति पर बडा कलंक लगा लिया है, तो क्या अनुचित होगा? ऊपर लिखे बेकार के व्यय से बाम्हनोंके अतिरिक्त और किसी का रत्तीभर लाभ नहीं होता-हाँ, फोकट का भोज खा-खाकर मस्त बने हुए ये साँड क्या करते हैं? अपने जादूटोने के जल से अज्ञानी शूद्रदाता से ही अपने चरण धुलवाकर चरणामृत भी उन्हेंही पिलाते हैं. अरे, इन कर्मनिष्ठ बाम्हनों के पूर्वजों ने अपने धर्मशास्त्रों में और मनुसंहिता में लिखे हुए कई वाक्यों पर हरताल फेरकर ऐसे ऐसे हीन कर्म क्योंकर किये? अब भी अच्छा हो कि वे सोच-समझ से काम लें और इस बारेमें अपनी भोली सरकार की एक ना सुनें. उन्हें चाहिये कि पर्वती आदि मंदिरों-संस्थानों में एक विशाल सार्वजनिक ब्राह्मण-सभा की स्थापना करके निश्चय करें कि कोई भी ब्राह्मण पर्वती आदि मन्दिरों-संस्थानों में जाकर शूद्रों की पसीने की कमाई की रोटी नहीं खायेगा. ऐसी ब्राह्मणसभा की सहायता से इस विषय में कोई उचित प्रबन्ध हो सके, तभी जाकर पुनर्विवाह को उत्तेजन देने वाले " पुनर्विवाह उत्तेजक मंडली " पर उनके ग्रंथों का थोड़ा ना थोड़ा प्रभाव पड़ सकेगा. किन्तु कहीं ऐसा न हो कि ऐसी बड़े-बड़े नाम वाली बड़ी-बड़ी सभाएँ बनाकर बाम्हन अपनी आँख का ताड़ भी ना देखें और सरकार की आँख का तिल खोजते रहें और अज्ञानी जनों के सामने उस तिल का ताड़ बनाकर उन्हें उकसाते-उभाड़ते फिरें " है तो गाय लंगडी,

लेकिन गावके सिवान में ना चरे, दूर भटकती फिरे" कुछ ऐसी ही बात हुई यहाँ. ऐसे व्यवहार को क्या कहें? ऐसे समय कि जब उस पवित्र बलिराजा की आज्ञा के अनुसार अमरीकन, स्कॉच और अंगरेज बंधु सारे शूद्रों को बाम्हनों की कृत्रिम दासता से मुक्त करा रहे हैं, जब कि शूद्र और वे बंधु एक दूसरे से लिपटकर गले मिलने जा रहे हैं, ऐसे समय बीच में टपककर पंडितजी कोई गड़बड़ न मचावे, यही उन्हें उचित है. अब बस हो गयी उनकी दौड़धूप. अब तो धिक्कार हो उनके चपाती और दाल-भात वाले गुप्त विद्रोह का.

□ □ □

भाग बारहवाँ

वतनदार ब्राह्मण कुलकर्णी, यूरोपियन लोगों की बस्ती की आवश्यकता, शिक्षा विभाग के मुख पर काला दाग़, यूरोपियन कर्मचारियों की अकल कैसे चकरा जाती है, इत्यादि के विषय में ....

धोंडीबा : ठीक है, परन्तु आपने पहले कहा है कि सारे कुल विभागों में बाम्हन ना भर पड़े हों, ऐसा एक सरकारी अथवा घरेलू विभाग ढूँढे से भी नहीं मिलेगा. तो अब यह कहिये कि इन सब में प्रमुख बाम्हन जी कौन है?

जोतीराव : वह है वतनदार बाम्हन "कुलकर्णी". उसकी छल-माया का बहुत से यूरोपियन कलैक्टरों को पता है, इसीलिए अज्ञानी शूद्रों पर उन्हें दया आयी और उन्होंने एक के बाद एक रिपोर्ट करके कुलकर्णी को सारे कायदे-कानूनों के बन्धनों में जकड़ लिया है. यही नहीं, कई तरह के नियमों का अड़गोड़ा उसके गले में बाँध दिया है और उसके मुँह पर जाबा कस दिया है. फिर भी इस अपने स्वार्थी धर्म के कारण उस कलम-कसाई का प्रभाव उन अज्ञानी शूद्रों पर छाया हुआ है ही, इसलिए अपने धर्म की आड़ में छुपकर यह शैतान भरी चौपाल के बीच बैठकर उस बलिराजा के मत की निन्दा करके अनाड़ी शूद्रों के मन भ्रष्ट करने से बाज आता है क्या? अवश्य मन भ्रष्ट करता होगा! यदि कहो कि नहीं करता, तो फिर वे शूद्र जिन्हें लिखना-बाँचना कुछ नहीं आता, वे उस मत का इतना द्वेष करना कहाँ से सीख गये? यदि तुझे इसका कोई दूसरा कारण मालूम हो, तो बतला दे. यही नहीं, उचित अवसर पाकर उसी चौपाल में बैठकर सरकारी कानूनों की कोई एक धारा लेकर उसमें से अनेकानेक तर्क-कुतर्क वाला अर्थ निकालकर उन्होंने क्या शूद्रों को चोरी-छिपे पट्टी नहीं पढाई होंगी ताकि वे सरकार से द्वेष करने लगें? उन तर्क-कुतर्कों का एक शब्द तो दूर, एक अक्खर, खड़ी पाई या मात्रा भी वे शूद्र अपनी सरकार को बता सकेंगे क्या? बेचारे थरथर काँपेंगे * क्योंकि ऊपर के सभी कार्यालयों में कर्मचारी यहाँ से वहाँ तक उनकी जातवाले बाम्हण ही हैं. इसके लिए आवश्यक है कि अब भी हमारी

---

* हॅनरी मीड की पुस्तक "दि सेपॉय रेवोल्ट" का चौथा अध्याय.

सरकार को कुछ सही सूझे. और वह ऐसा करे कि कम से कम एक अंगरेज या स्काँच व्यक्ति को उसका गुज़ारा होने लायक स्वामित्वहीन खाली पड़ी ज़मीन इनाम में दी जाय, उसे उपदेशक का काम सौंपा जाय और वह व्यक्ति सरकार को अपने अपने गाँव की कुल कच्ची जानकारी कम से कम वर्ष में एक बार तो देता रहे. अगर ऐसा कानून बनाकर प्रबन्ध कर दिया गया, तो ही ठीक होगा, क्योंकि उससे यह होगा कि यदि आगे कभी नाना जैसे ब्राह्मण के मन में फिर से विद्रोह करने की बात उठेगी और फिर पहले की भाँति उस नाना का दादा कोई बाम्हनभाई किसी पीर का या शिवलिंग का मेला लगवाकर, उसमें रसा-चावल के बदले गुप्त सांकेतिक चपातियाँ बँटवायेगा, फिर पहले की तरह ही वे गुप्त सांकेतिक चपातियाँ निश्चित समय पर गाँव-गाँव पहुँचाई जायेंगी और अज्ञानी शूद्रों के द्वारा वे चपातियाँ मेंले की प्रसादीके रूप में गाँव-गाँव पहुँचवायी जायेंगी और इस चाल से हमारी सरकार को चित गिराकर उसके मुख में वे चपातियाँ शूद्रोंके हाथों डलवायी जायेंगी. पहले नाना के पहले विद्रोह में यही रीत अपनायी गयी थी और यदि गाँव-गाँव में यूरोपियन अधिकारी होगा, तो भट्ट बाम्हनों का मेल-जोल किसी काम नहीं आयेगा. ऐसा किए बिना अज्ञानी शूद्रों के पाँव हमेशा ज़मीन से उखड़े हुए रहेंगे, कभी जम ही नहीं पायेंगे. यहीं नहीं, यूरोपियन उपदेशक द्वारा जब सब शूद्रोंको सत्य ज्ञान प्राप्त होगा और उनकी आँखें खुल जायेंगी, तो वे इस ग्रामराक्षस की छाया के पास भी नहीं फटकेंगे. दूसरी बात यह कि सरकार को चाहिये-पटेल के काम के लिए और कुलकर्णी के काम के लिए परीक्षा लिया करे और वह यह दोनों काम एक ही जाति को ना सौंपे. जैसे सेनाके प्रबन्धादि में कोई कष्ट नहीं होता और पूरा प्रबन्ध ठीक से हो जाता है, उसी प्रकार पटेल-कुलकर्णी के बारे में भी हो. तभी सब लोगों में विद्या पाने का चाव अपने आप बढता जायेगा. हमारी दयालु सरकार चाहे तो शिक्षा विभाग के फिजूलखर्चे को पूरी तरह बन्द कर दे और वह सारा पैसा कलैक्टर विभाग में जमा कर ले. फिर जॉरविस साहब जैसे किसी एक कलैक्टर के द्वारा बिना किसी पक्षपात के सब जाति के लोगों के बुद्धिमान् लड़कों में से कुछ लड़के चुन ले-उन्हें मोटा-झोटा अनाज-कपड़ा देने की व्यवस्था करे, उनके लिए हर कलैक्टर के बंगले के पास ही स्कूल खोलकर उसमें पटेलगीरी, पटवारीगीरी (कुलकर्णी) और गुरुजी के काम की परीक्षा लिया करे, और उन्हें ही वे काम सौंप देवे. तब यह होगा कि कुलकर्णियों की टोली को फुरसत ही नहीं मिलेगी कि वे बदमाश नाना के और उस जैसे दूसरे बाम्हनों के फेर मे किसी को फाँसें. उसी तरह यदि वे बाम्हन धोखा-धड़ी से अनजान

नासमझ शूद्रों की ज़मीनें हडपते होंगे या उन लोगोंमे नानाके जैसे टंटे-बखेड़े खड़ा करते होंगे, तो उन्हें इन कामों के लिए फुरसत ही नहीं मिलेगी. आज तक शिक्षा विभाग की मद में यद्यपि लाखों रुपये खर्च हुए हैं, फिर भी उस के कारण शूद्र लोगों के अनुपात से उस समाज में पढे-लिखे की संख्या कुछ भी नहीं बढी. संख्या तो दूर. महार, मांग, चमार, आदि में तो एक भी पढा-लिखा कर्मचारी नहीं मिलता. फिर एम.ए., या बी.ए. पास तो दूर की बातं है. अरे अरे, अपनी इस सरकार के इतने दिगंबर शिक्षा विभाग के गोरे मुख पर काले मुँह के इन बाम्हन-गुरुजी ने यह कैसा काला दाग़ लगा दिया है ! अरे, यह तो कडुअे करेले हैं. हमारी सरकार इन्हें घी में तलकर और शीरे में डालकर हिलाये-रगडे, फिर भी यह अपनी जात की बान ना छोड़ें. आख़िर तक कड़वे के कड़वे ही रहेंगे.

धोंडीबा : अच्छा, यह कहिये कि ये कुलकर्णी अज्ञानी शूद्रों को ठगकर उनकी ज़मीनें कैसे हथिया लेते होंगे ?

जोतीराव : जिन शूद्रों को कुछ भी लिखना-पढना नहीं आता, ऐसे कईयों को कुलकर्णी पकड़ लेते हैं. खुद उनके साहूकार बन बैठते हैं और उनसे रेहननामा आदि दस्तावेज लिखवा लेते हैं. उस समय वे लोग अपनी ही जात के लेखक से मिली-भगत करके उस कागज़ में एकतरफ़ की शर्तें लिख लेते हैं. उस अनपढ शूद्र को कुछ का कुछ पढकर सुना देते हैं. कलम से उसका अँगूठा लगाकर खरीद-ख़त पूरा कर लेते हैं. फिर आगे कुछ दिनों के बाद धोखे-धड़ी से लिखी गयी शर्तों के अनुसार उन शूद्रों की माफ़ीदारीकी ज़मीनें पेट में ढकोसकर डकार देते होंगे या नहीं ?

धोंडीबा : अच्छा जी, यह जात के कलम-कसाई अज्ञानी शूद्रों में कैसे-कैसे टंटे-बखेडे खड़े करते होंगे, यह तो कहिये.

जोतीराव : खेती और खेती की मेंड के बारे में, पोला (बैलों का त्यौहार) के मौके पर किसके बैल आगे और किसके पीछे रहें, इस बात को लेकर, शिरालशेट ग्रामीण त्योहार के जलूस में कौन दाँयें रहे और कौन बाँयें चले, इस बारे में – होली में रोटी कौन पहले सेंके, इस बारे में, जितने भी ऐसे सारे झगडे-टंटे होते हैं, वे कराने के पीछे बाम्हन कुलकर्णी ना हो, ऐसा एक भी टंटा-बखेडा तू मुझे दिखा नहीं सकेगा. बोल, दिखा सकता हैं क्या ?

धोंडीबा : अच्छा, ऐसे बखेड़े खड़े करने से इन कलम-कसाईयों के पल्ले क्या पड़ता होगा भला?

जोतीराव : अरे, जब कई कुलीन किन्तु अनपढ़ शूद्रों के घराने ईर्ष्या-द्वेष से सुलगकर आपस में लड़ते-झगड़ते होते हैं, तो भीतर ही भीतर इन कलम-कसाईयों के और दूसरे बाम्हन कर्मचारियों के घरोंकी छत बनती जाती है और तब वे घराने स्वयं मिट्टी में नहीं मिले होंगे क्या? अरे, इन कसाईयों की नारदवाली नीति के कारण ही दीवानी और फ़ौजदारी मुकदमों का ख़र्चा बेहिसाब बढता गया है. उस विभाग के अधिकतर ब्राह्मण कारकुनों मामलतदारों और चिटनवीसों ने अपने खास गुप्त मंत्र " तत्सवितुवरेंण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् " इस मूलमंत्र को धता बता दी और उन्होंने सीख लिया है नया यावनी गायत्री का मंत्र " चिरीमिरी देव. चिरी मिरी देव. " " बनाना चाहो काम, तो लाओ छोटा-मोटा दाम ". ब्राह्मण-पंडितजी से सीखे हुए इस मंत्र से बाम्हन वकीलों की दलाली बढ चली है और तब वे बड़ी-बड़ी कचहरियों में बैठे-बैठे और कभी दागिया सांड के जैसे रास्तों पर डकराते फिरते हैं या नहीं? और फिर मुन्सिफ और नवाबों के सरंजाम कितने बढ गये हैं, इसका हिसाब तू बतला तो सही. इतनी सारी व्यवस्था है, फिर भी गरीवों को न्याय सस्ते में मिलता है क्या? और वह भी समय पर मिल पाता है क्या? यही कारण है कि गाँव-बस्तियों में सव तरफ एक कहावत फैल गयी है. लोग कहते हैं कि सारे विभागों में जो बाम्हन-कर्मचारी भरे पडे हैं ' उनके हाथ में कुछ खनक-ठनक रखे बिना वे हम गरीबोंके काम को छूते भी नहीं. कहावत है " उनके खोपड़े पर डालने को कुछ साथ लेकर चलो, तभी घर से बाहर निकलो, भाई. "

धोंडीबा : अगर ऐसा है, तो गाँवों के शूद्रलोग एकांत में यूरोपियन कलैक्टर से मिलकर अपनी शिकायतें बतलाते क्यों नहीं हैं?

जोतीराव : अरे, जिसे ओनामासी में से " ओ " का मूँड किधर और चूतड़ किधर, यह भी पता नहीं, ऐसा डरपोक भाऊ बड़े बड़े अधिकारियों के सामने खड़ा हो सकेगा? और फिर अपनी शिकायत सही-ठीक तौर से कह पाना तो कितनी बडी मुसीबत! इतने पर भी मान लो अगर किसी लंगोटी-बहादुर ने छाती में दम भरके हिम्मत कर ही ली और किसी बटलर की सहायता से एकांत पाकर यूरोपियन कलैक्टर के सामने कह ही दिया कि " मेरी कहीं सुनवाई नहीं होती ". यह चार शब्द कहने की ख़बर उस कलम-कसाई को लगने भर की देर है कि बस, समझो कि उस अभागे का भाग ही फूट

गया. क्योंकि फिर तो कलैक्टर की कचहरी के अपने बाम्हन-चिटनवीस से लेकर रेवेन्यू और न्यायालय विभाग तक के सारे बाम्हन कर्मचारियों में भीतर ही भीतर यावनी गायत्री का संदेश पहुँचा दिया जाता है. फिर तुरंत ही आधे कलम-कसाई वादी के गवाह बनकर तरह-तरह के दाखिलों के प्रमाण लेकर आ जाते हैं – और आधे कसाई वादी के विरुद्ध तरह-तरह के दाखिले और प्रमाण लेकर प्रतिवादी के गवाह बन जाते हैं. सब मिला-मिलाकर उस मुकदमे में कुछ ऐसा घोटाला कर देते हैं कि उसमें से सच-झूठ जानने-पहचानने में बड़े-बड़े सयाने यूरोपियन कलैक्टर और जज भी अपनी सारी अकल लगा दें, फिर भी उन्हे कभी-कभी तो उस मामले का रत्ती भर भी भेद समझ नहीं आता और तब वे उलटे उस शिकायत करने वाले लंगोट-धारी को ही कहते हैं "तू तो बडा चालाक है" और इस तरह उसके हाथ में नारियल का खप्पर देकर उसे अपने घर जाकर रोने-धोने और हो-हल्ला मचाने भेज देते होंगे. है या नहीं? इनमें से कई हारकर डाकू-लुटेरे बन गये होंगे और इस तरह अपनी जान गँवा बैठे होंगे. है या नहीं? कई खीझ और बौखलाहट के मारे पागल नहीं हो गये होंगे? और क्या कई ऐसे ना होंगे कि दाढ़ी बढ़ाकर आधे पागल से होकर रास्ते में मिलने वाले हरेक से अपनी शिकायत कहते फिरे होंगे?

□□□

भाग तेरहवाँ

मामलतदार, कलैक्टर, रेवेन्यू, जज और इंजिनियरिंग विभाग के ब्राह्मण कर्मचारी इत्यादि के बारे में ....

धोंडीबा : तो क्या इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण मामलतदार अज्ञानी शूद्रों का नुकसान करते हैं?

जोतीराव : आज तक जितने बाम्हन मामलतदार हुए हैं, उनमें से कई अपने भ्रष्ट आचरण के कारण सरकार द्वारा अपराधी ठहराये गये और दंड के भागी बने हैं. वे लोग काम करने में इतनी दुष्ट रीति से बर्ताव करते थे और गरीबों, दीन-दरिद्रों पर इतना अत्याचार करते थे कि उनका वर्णन करते एक पुस्तक बन जायेगी. अरे, इस पुणे जैसे शहर में भी बाम्हन-तहसीलदार गाँव के कुलकर्णी से लाया हुआ प्रमाण-पत्र ही माँगते हैं. बड़े-बड़े साहूकारों की साख भी वे मंजूर नहीं करते हैं. तब बता कि गरीबों-दुर्बलों की सुनवाई कैसे हो? अरे, ये कुलकर्णी प्रमाण-पत्र देते समय अपना ढोल पीटकर अपना मान बढा लेते होंगे या नहीं? यही दशा इस शहर की म्यूनिसिपैलिटी की है. कोई एक घरमालिक अपने पुराने पाखाने की जगह नया पाखाना बनाना चाहे, तो बाम्हन-तहसीलदार उस मुहल्ले के कुलकर्णी का मत जाने बिना नया पाखाना बाँधने नहीं देता. अरे, सोच तो सही, उस मुहल्ले का नक्शा उस कुलकर्णी के पास है. उसमें सारे नये मकान ख़रीद करने वालों के नाम शामिल कर लिये जायँ और हर साल उसकी प्रति मामलतदार के दफ़्तर में रख देने की पद्धति रखी जाय, ऐसा नियम होना चाहिये. किन्तु ऐसा नियम है नहीं, तब बता कि उस जगह के बारे में कुलकर्णी का कहना सच कैसे माना जाय? इन सारे कारणों से सन्देह होता है कि अवश्य ही बाम्हन-मामलतदार ने अपनी जात के कलम-कसाईयों के भले के लिए ऐसी पद्धति चला रखी होगी. इस बात को सुनकर अब तू ही सोच देख कि जब यूरोपियन लोगों की बस्ती के पासवाले पुणे शहर में बाम्हन मामलतदार ऐसी तानाशाही करके अपनी जात के कलम-कसाईयों की पाँचों अुंगलियाँ घी में डालते हैं, तब गँवई-गाँवों में वे क्या क्या जुल्म न ढाते होंगे? अगर कहो कि ऐसा नहीं है, तो फिर

हम जो देखा करते हैं कि खेडे-गाँव के कितने ही अनपढ शूद्रों के झुंड के झुंड बगल में कागज़ोंका पुलिंदा दबाये बाम्हन-कर्मचारियों के नाम से चिल्लाते फिरते हैं, वह सब झूठ है क्या? उनमें से कोई कहता है – बाम्हन कुलकर्णी की तिकडी के कारण बाम्हन-मामलतदार ने मेरी अर्ज़ी समय पर नहीं ली, इस कारण प्रतिवादी ने मेरे सारे गवाह फेर लिये और उलटे मुझे ही जमानत लेनी पडी. कोई कहता है – बाम्हन-मामलतदार ने मेरी अर्ज़ी लेकर अब तक दबा रखी, और प्रतिवादी की अर्ज़ी अगले ही दिन ले ली और मेरे कुल-पीढी के चले आ रहे अधिकार को एकदम साफ़ कर दिया और मुझे इस तरह दर-दर का भिखारी बना दिया. कोई कहता है – मैंने कहा कुछ और बाम्हन-मामलतदार ने लिखा दूसरा ही बयान, फिर उस बयान के आधार पर मेरे मामले में कुछ ऐसा घपला कर मारा है कि अब मेरे पागल होने की नौबत आ गयी है. कोई कहता है – मेरे प्रतिवादी ने बाम्हन-मामलतदार द्वारा मेरे लागू अधिकार को ठोकर मारकर उड़वा दिया – फिर जैसे ही उसने अपनी अकरी मेरे खेत में चलायी कि मैं दौड़ता उस बाम्हन-मामलतदार के पास गया. ज़मीन तक हाथ लगाकर, बड़ी नम्रता से उसे मुजरा किया – फिर बिना कुछ बोले मैंने अपनी अर्ज़ी उसके हाथ में दी – फिर मैं उसी तरह झुककर चार-पाँच कदम पीछे हटा और दोनों हाथ जोडकर उसके आगे दीन मुख बनाकर थर-थर काँपते-काँपते चुपचाप खड़ा हो गया. तभी उस यम के भाई ने मुझे एक बार सिर से पाँव तक देखा और झट से मेरी अर्ज़ी मेरी ओर फेंक दी और यह कहकर कि मैंने कोर्ट की बेअदबी की है. उलटे मुझेही दंड दे दिया. दंड की रक़म भरने की मेरी ताक़त भी नहीं, इसलिए मुझे कई दिन क़ैद में पड़े रहना पड़ा. उधर गाँव में जिस खेत को मैंने हल चलाकर, पाटा-पटेला मारकर साफ़-सपाट बना रखा था, उस खेत में प्रतिवादी ने बुआई कर डाली और उस पर अपना कब्ज़ा जमा लिया. तब मैंने कलैक्टर साहब को दो-तीन अर्जियाँ दीं, लेकिन वहाँ के बाम्हन कर्मचारीने वे सारी अर्जियाँ कहाँ दबा दीं इसका कुछ अता ना पता. अब ऐसे में क्या करूँ मैं? कोई कहता है-बाम्हन चिटनवीस ने जब मेरी अर्ज़ी कलैक्टर साहब को सुनवाई, तो पढते समय उसकी खास दफ़ा बिना पढे छोड़ दी और इस तरह बाम्हन मामलतदार वाला फैसला ही पक्का करा दिया. कोई कहता है – कलैक्टर साहब ने मेरी अर्ज़ी देखकर खुद अपने मुँह से जो लिखवाया, वहाँ के बाम्हन-कारकुनने उस हुकम के खिलाफ ब्यौरा लिख दिया, या मगर पढते समय अक्खर अक्खर वही पढा, जो कलैक्टर साहब ने लिखवाया था और फिर उस फैसले के कागज पर साहब के हस्ताक्षर

करा लिये. वह फैसला जब मामलतदार के मारफत मुझे मिला, तब तो मैंने अपना सिर ही पीट लिया कि "अरे अरे. ये बाम्हन कर्मचारी अपना पन पूरा किये बिना चुप नहीं बैठते. एक दूसरा आपबीती कहता है – जब कलैक्टर साहब के यहाँ भी मेरी फ़रियाद की सुनवाई नहीं हुई, तो मैंने रेवेन्यू साहब के नाम दो-तीन अर्ज़ी भेजीं, लेकिन वहाँ के बाम्हन-कर्मचारी ने कुछ अंट-संट किया और मेरी वे सारी अर्जियाँ रेवेन्यू साहब ने फिर कलैक्टर की राय के लिए वापस भेज दीं. फिर कलैक्टर के बाम्हन-कर्मचारियोंने मेरे सारे कागज़ोंमें कुछ उलटा-सीधा किया और कलैक्टर साहब को पढ़कर सुनाया. तब कलैक्टर साहब ने मेरी अर्ज़ी के पीछे लिख दिया कि मैं बड़ा शिकायतखोर हूँ. फिर इसी बात को रेवेन्यू साहब के सामने रखकर उन्हें कुछ समझा-बुझा दिया. बस, मामला ख़तम. अब बता कि कोई करे तो क्या करे? कोई कहता है-जज साहब ने मेरा मुकदमा शुरु होते ही बीच में ही बात काटने वाले अपने पेशकार को डाँटते हुए कहा " तू चुप रह. बीच में मत बोल. " उसके बाद उन्होंने मेरे कागजात स्वयं पढकर देखे, लेकिन वे कागज़ बेचारे भी क्या करें? क्योंकि कलैक्टर कार्यालय के बाम्हनों ने कुलकर्णी की सूचना के अनुसार पहले ही मेरे मुकदमे का सारा रंग-ढंग ही बदल डाला था. कोई कहता है – आज तक कुल मिलाकर बाम्हन-कर्मचारियों की देवपूजा के कमरे में तय हुए के अनुसार मैं उनके घर भरता रहा हूँ, उनका कहा पूरा करते-करते मेरा घर रीता होता गया, मेरे चौखट-दरवाजे बिक गये, खेत गये, टाट और बोरे गये-घर का सारा साज-सामान जाता रहा और अब तो मेरी औरत के तन पर एक फूटा मनका भी नहीं रहा. आख़िरकार जब हम सब भूखे मरने लगे, तो मेरे छोटे भाई मजदूरी करने लगे-सड़क के काम में सिर पर टोकरियाँ ढोने लगे. मगर वहाँ भी बाम्हन जी का राज, तोला भर भी काम करना तो दूर, वे बस रोज़ सुबह-शाम एक बार आकर हाजिरी लगा देते हैं और फिर किसी अललटम मराठी अख़बार में लिखा गया कोई लेख कि जिसमें अंगरेजी सरकार की या उनके धर्म की निन्दा की गयी हो, उस लेख का सारांश सुनाकर अपने घर की राह लेते हैं. सरकार भी इतने से काम के लिए उसे मजदूरों से दुगने से अधिक पगार देती है. कोई मजदूर अगर पगार मिलते ही उस बाम्हन जी की मुट्ठी गरम ना करे, तो तुरंत अगले ही दिन से उस मजदूर के बारे में ऊपर वाले साहब से ऊट-पटांग चुगलियाँ करते हैं और जान बूझकर उसकी गैरहाजिरी लगा देते हैं. यही नहीं, कोई कोई पंडितजी कहता है – सुन रे, सरकारी काम पूरा करके शाम को घर लौटते समय पत्तलों के लिए बड़ के पत्र और थोडी सी ईंधन की फूँस-काड़ी लाकर

मेरे आँगन में रख जाना. कोई बाम्हनजी कहता है – सुन, वो आम है ना, उसकी डालियाँ तोड़ के रात को मेरे घर डाल जाना. कोई कहता है – उस * तिरगुल की नज़र बचाकर मुझे थोड़े से पत्ते ला दे. देख, कहीं वह तुझे पत्ते लाते देख ना ले. कोई कहता है–आज रात मैं गाँव में धंधेवाली रांड के घर ब्यालू करने जा रहा हूँ. इसलिए तू रोटी खाकर मेरे घर जा और रात को मेरे परिवार की देखभाल करने को वहीं सो जा. लेकिन सुन, कल सुबह काम पर बिला नागा हाज़िर रहना. कल शाम को बड़े इंजीनियर साहब हमारा काम देखने आने वाले हैं – रावसाहब की चिट्ठी आयी है ऐसी. बाम्हनों से होने वाले अंदर-भीतर की * ऐसी कितनी ही कष्ट-कथाएँ मेरे भाई मुझे घर आते ही सुनाते हैं और सुनाते-सुनाते फूट फूटकर रोने लगते हैं. “क्या करुँ दादा, क्या करुँ मैं? यह सारे बाम्हन अठारह वर्णों के गरू ठहरे, ये कैसा भी कुछ भी करें, फिर भी शूद्र को मुँह बंद ही रखना चाहिये. अपने शास्त्र चीख-चिल्लाकर कह रहे हैं ऐसा. मेरा कुछ बस नहीं चलता. नहीं तो मैं तो कभी का अंग्रेजी बोलना सीख लेता, इन सारे बाम्हनों की सारी ठग विद्या साहब लोगों से कह देता और इस तरह उनके द्वारा इन धूर्तों की सारी चालाकी ख़तम करा देता. इसके सिवाय इंजीनियर विभाग में भी जो बाम्हन-कर्मचारी हैं, ठेकेदार उनकी लुच्चेगीरी की इतनी कहानियाँ सुनाते हैं कि उनकी एक पुस्तक ही बन जायेगी. इसलिए अभी उस बारे में चुप ही रहता हूँ. कहने का तात्पर्य यही कि ऊपर बतायी गयी शिकायतों में अगर कुछ सच्चाई है, तो यह भी तो हमारी सरकार का ही कर्तव्य है कि छान-बीन कराके ऐसी शिकायतों के बारे में कोई व्यवस्था करे.

□ □ □

---

* तिरगुल – ब्राह्मणों की एक उपजाति.

* इस विषय में पुस्तक के अन्त में इंजीनियर विभाग पर जो पँवाडा लिखा है, वह देखें.

भाग चौदहवाँ

यूरोपियन-कर्मचारियोंकी विवशता, खोतों का प्रभुत्व, पेंशन पाकर निश्चिंत बैठे. यूरोपियन अधिकारियोंद्वारा गाँव-गाँव जाकर वहाँ की वस्तुस्थिति से सरकार को अवगत कराना इत्यादि के विषय में ....

धोंडीबा : क्यों जी, अगर कुल सारे विभागों में बाम्हन-कर्मचारियोंकी भरती होने के कारण ऐसी दशा होती है, तब यूरोपियन कलैक्टर क्या करते रहते हैं? वे सरकार को ब्राह्मणों की इन धूर्तताओं की रिपोर्ट क्यों नहीं भेजते हैं?

जोतीराव : अरे, इन बाम्हन-कर्मचारियों के हुनर के कारण उनकी टेबल पर काम का इतना ढेर लगा रहता है कि उसमें से कई ज़रुरी कामों का फ़ैसला करके केवल मराठी में लिखे कागज़ों पर हस्ताक्षर करते-करते ही उनकी नाक में दम आ जाता है. वे बेचारे इस सारे अनर्थ की पूरी जाँच-पडताल करके सरकार को रिपोर्ट करें भी तो कब? यह सब होते हुए भी मैंने सुना है कि कोकण प्रदेश के अज्ञानी शूद्रों पर * बाम्हन खोतोंके जो जुल्म होते हैं, उन्हें दूर करने के लिए वहाँ के अधिकतर दयालु कलैक्टरों ने बहुत प्रयत्न किये हैं. वे स्वयं अज्ञानी शूद्रों की ओर से बाम्हन-खोतों के विरुद्ध प्रतिवादी बन गये हैं और सरकारी स्तर पर प्रयत्न कर रहे हैं. दूसरी ओर यह भी हो रहा है कि सारे बाम्हन-खोतों ने अमरीका के स्लेव होल्डर की देखा-देखी अपने स्वार्थी धर्म की सहायता लेकर अज्ञानी शूद्रों को सरकार के विरुद्ध उलटा-पाठ पढाया, इस कारण बहुत से अज्ञानी शूद्र उलटे यूरोपियन कलैक्टर के विरुद्ध ही कमर कसकर खड़े हो गये और सरकार से कहने लगे – "हम पर बाम्हन-खोत का जो अधिकार है, वह वैसे ही बना रहने दिया जाय" अब देख ले कि इस मामले में बाम्हन-खोतजीने शैतान की भाँति अज्ञानी शूद्रों को जाल में कैसा फँसाया है! अपनी भोली सरकार को अज्ञानी शूद्रों

---

* खोत = कोकण प्रदेश के गाँवो में मालगुजारी का मुख्तार अथवा चौधरी. जमींदार.

को मत की शह में अटका दिया और प्यादोंके बल पर ही इस परोपकारी यूरोपियन कलैक्टर को कैसी मात दी है! तूही देख ले.

धोंडीबा : क्योंजी, अगर ब्राह्मणों के कहने में आकर अज्ञानी शूद्र सब ओर से इस तरह अपना नुकसान करे ले रहे हैं, तब तो अगर आगे कभी वे बाम्हनों का कहा मानकर अंगरेज सरकार के हैट पर थाप मारने को हाथ उठा बैठें, तो उनका कितना नुकसान होगा? क्योंकि बाम्हन जी की दासता से मुक्त होने का जैसा अवसर अब आया है, वैसा फिर आना कठिन है. इस लिए शूद्रों के हाथों कहीं ऐसा अनर्थ ना हो जाय, इसके लिए आपको कोई उपाय सूझता है क्या? सूझता हो, तो शूद्रों को समझाने का तो कोई लाभ नहीं, वे ठहरे अज्ञानी, परन्तु अपनी कृपालु सरकार को तो एक बार बतलाकर देखिये. इस पर भी अगर शूद्रों के दुर्भाग्य ने डेरा ही डाल दिया हो, तो आप भी क्या करेंगे?

जोतीराव : इसका उपाय है. मैं यह नहीं कहता कि बाम्हन-समाज के अनुपात से सब विभागोंमें बाम्हन-कर्मचारी ना नियुक्त किये जायें? किन्तु कहता हूँ कि संख्या के उसी अनुपात से शेष सब जातियों के लोगों की नियुक्ति भी की जाय. यदि ऐसे लोग न मिलें, तो केवल यूरोपियन कर्मचारी नियुक्त किये जायँ. परिणामस्वरुप बाम्हन-कर्मचारी सरकार का भी और साथ ही अज्ञानी शूद्रों का भी इतना नुकसान नहीं कर सकेंगे. दूसरा उपाय यह कि जिन यूरोपियन कलैक्टरों को अच्छी साफ मराठी बोलना आता है, जीवन भर के लिए पेंशन दे कर सरकार उन्हें वहीं खेडों-गाँवों में उन अज्ञानी भय के पुतलों के बीच मिलकर रहने दे. उन अधिकारियों द्वारा सारे बाम्हन-कुलकर्णी आदि कर्मचारियों की चतुराई पर बड़ी बारीकी से देख-देख की जाय और उनसे हमेशा वहाँ की वस्तुस्थिति की कच्ची रिपोर्ट मँगवायी जाय. इससे यह होगा कि सरकारी शिक्षा विभाग में चल रही बाम्हन-शिक्षकों की प्यारी-प्यारी चालाकियों की पोल खुल जायेगी-फिर आज शिक्षा विभाग में हो रही अव्यवस्था कुछ ही दिनों में ठीक-ठाक हो जायेगी. मेरा तो पूरा विश्वास है कि ऐसा होने पर अज्ञान-और दुख-दरिद्रता से दबे शूद्रों को सच्चाई का ज्ञान होगा, वे बाम्हनों के कुतर्की अधिकार को धिक्कारने लगेंगे और अपनी रानी सरकार * के उपकार कभी नहीं भुलायेंगे. क्योंकि यह सच है कि हम शूद्रों के गले में बँधे गुलामी के पट्टे की पकड़ किसी से जल्दी छुड़ाये न बनेगी, न ही मिटाते बनेगी.

---

* ब्रिटेन की सम्राज्ञी महारानी विक्टोरिया.

धोंडीबा : फिर यह तो कहिये कि आप बचपन में गतका-फरी का और गोली-चलाने का जो खेल सीखते थे, वह किस लिए था?

जोतीराव : अपनी दयालु अंगरेज सरकार को मुँह के बल औंधा गिराने को था.

धोंडीबा : परन्तु आप ऐसा दुष्ट विचार सीखे कहाँ से?

जोतीराव : चार सुधारक बाम्हन विद्वानों से. इसका कारण वे बतलाते हैं (बतलाते तो हैं, परन्तु खुले-आम नहीं, घर में चूल्हे के पास बैठकर) बतलाते हैं कि अपने समाज के अधिकतर लोग अपने अनादि सिध्द धर्म के बारे में अज्ञानी थे, इसलिए अपने लोगों की एकता नष्ट हो गयी. इस कारण अपने में अनेक जातियाँ बन गयीं और इस प्रकार उस फूट और मनमुटाव के कारण अपना राज्य अंगरेजों के हाथ चला गया. अब वे इस कोशिश में लगे हैं कि अपने धार्मिक श्रद्धालु लोगों के मनों में जो देशाभिमान शेष है, वह भी न रहे और इसीलिए वे अंगरेज अपने स्वार्थपूर्ण धर्म का आधार दिखलाकर अज्ञानी जनों को अपना गुरुबंधु बना रहे हैं. इसलिए जब तक हम सब जाति के लोगों में एकता नहीं होती, तब तक हममें अंगरेजों को अपने देश से भगाने की शक्ति नहीं आ पायेगी. ऐसा एका लाने के लिए हमें अपने अनादिसिद्ध धर्म में थोड़ा सा परिवर्तन भी करना पड़ेगा ही. और अपनी ऐसी दृढ एकता किये बिना हम अमरीकन, फ्रेंच और रशियन लोगों की बराबरी कभी नहीं कर पायेंगे – टॉम्स पैन आदि लेखकों की पुस्तकों के कई वाक्यों का वर्णन कर करके उन्होंने मेरे सामने ऐसे विचारों को सिद्ध कर दिखाया. ऐसी बातों को सुन-सुनकर बचपन में कुछ गतका-फरी और गोली-चलाने जैसे पागलपन के फेर में मैं कुछ दिनों तक पड़ा रहा था. किन्तु आगे चलकर जब उन्हीं पुस्तकों के बारे में मैं गहराई से सोचने-विचारने लगा, तब इन सुधारक और प्रगतिशील कहाने वाले बाम्हनों की स्वार्थपरायण मंत्रणा का सच्चा अर्थ मेरे ध्यान में आया. वे जानते थे कि अगर हम सब शूद्र लोग अंगरेजों के गुरुबंधु हो जायेंगे, तो बाम्हनों के पूर्वजों के पाखंडी धर्म का धिक्कार करने लगेंगे और फिर जाति की उच्चता पर घमंड करने वाले उनके मत के मुँह में मिट्टी भर जायेगी और उनके प्रत्येक आलसी को हम शूद्रों की मेहनत की रोटी मुफ्त में उड़ाने का मौका नहीं मिलेगा. फिर ब्रह्मा का बाप भी आ जायेगा, तो कभी नहीं कह सकेगा कि ब्राह्मण शूद्र से ऊँचा होता है. अरे, जिन लोगों के मूल पूर्वजों को देशाभिमान शब्द भी मालूम नहीं था, ऐसे लोगों ने उस शब्द का आज ऐसा अर्थ कर डाला है, तो इसमें

आश्चर्य कैसा? क्योंकि अंगरेजों ने भी उनके बलिराजा के आगमन से पहले ग्रीक लोगों की पाठशाला में ही देश-अभिमान सीखा था. किन्तु आगे चलकर जब वे लोग बलिराजा के अनुयायी हो गये, तब उनमें यह सद्गुण इतना बढ गया कि अन्य किसी भी धर्म के अनुयायी में उतना स्वदेशाभिमान देखने को नहीं मिलेगा. यदि वे देना ही चाहें, तो स्वदेशाभिमान के बारे में उनके अपने बलिराजा के महानुयायी और अमरीका के उनके अपने महापुरुष जॉर्ज वाशिंग्टन की उपमा वे दे सकते हैं. यदि वे वैसे महापुरुष से तुलना करने में हिचकिचाते हों, तो बलिराजा के धर्म अनुयायी और फ्रांस देश के लफेटे की उपमा तो दे ही सकते हैं. तब कोईभी उन्हें कुतर्की नहीं कह सकेगा. अरे, इन सुधारक विद्वानों के पूर्वजों को यदि स्वदेशाभिमान का सचमुच कुछ भी ज्ञान होता, तो उन्होंने अपनी पोथियों में अपने ही देश के भाई शूद्रों को पशु से भी हीन बतलाने वाली बातें ना लिखी होतीं. यह लोग विष्ठा खानेवाले पशु का गोमूत्र पीकर पवित्र होते हैं, परन्तु शूद्र के हाथ का फुहारे का साफ़ पानी पीना भी अपवित्र मानते हैं. अच्छा, इन प्रगतिशील सुधारक विद्वानों के पूर्वजों ने ग्रिशियन लोगों के पवित्र देशाभिमान के विरुद्ध जो अपना अपवित्र देशाभिमान उपस्थित किया था, उसका हमें किसके प्रताप से ज्ञान हुआ? – अंगरेजों के कारण ही. और ऐसे परोपकारी लोगों को अर्थात् हमें बाम्हनों की दासता से छुड़ाने वाले लोगों को अपने देश से मार भगाने की सलाह भला कौन और क्यों मानेगा? कौन ऐसा मूरख है, जो अपने तारनहार पर ही हाथ उठायेगा? परन्तु मैं तुझसे कहता हूँ – सुन, अंगरेज आज यहाँ हैं, कल नहीं होंगे. कोई नहीं कह सकता कि अंगरेज जनम भर हमारा साथ देंगे. इसलिए समझदारी इसीमें है कि जब तक इस देश में उनका राज्य है, तब तक हम शूद्रजन जल्दी-जल्दी करके बाम्हनों के बापदादों से चली आ रही गुलामी की जंजीर को झटका देकर तोड़ दें. वह तो भगवानजी की शूद्रों पर बड़ी दया हुई समझो कि अंगरेजों के हाथों बाम्हन नाना पेशवा का विद्रोह दबा दिया गया. बड़ा अच्छा हुआ. अन्यथा शादावल के आगे वाले लिंग के सामने रुद्रपाठ करने वाले इन सुधारक बाम्हनों ने आजतक कितनेही शूद्रों को काले पानी भिजवा दिया होता! किस अपराध के कारण? इसलिए कि शूद्र महार ने बाम्हनों जैसी एक लांग की धोती क्यों पहनी? या फिर कीर्तन में उसने संस्कृत श्लोक क्यों बोला? इतने से कारणों से कई महारों को काले पानी की सज़ा दिला दी होती उन्होंने.

□ □ □

भाग पंद्रहवाँ

सरकारी शिक्षा विभाग, म्यूनिसिपैलिटी, दक्षणा प्राईज कमेटी, ब्राह्मण समाचारपत्रकर्ताओं की एकता तथा शूद्रादि अतिशूद्रों के बच्चे विद्या प्राप्त न कर पायें एतदर्थ बाम्हनों का षड्यंत्र इत्यादि के बारे में ....

धोंडीबा : बाम्हन-कर्मचारी सरकारी शिक्षा विभाग में जो मिठास भरी चालाकियाँ करते हैं, वह कौनसी हैं? तनिक कहिये तो.

जोतीराव : बाम्हनों को भय सता रहा है कि आज की जिन पुस्तकों के सहवास से इनके सारे ग्रंथों की सारी चालाकियाँ सामने आ जायेंगी और उससे उनके पूर्वजों की बडी छीछालेदार होगी, इस डर के मारे उन्होंने हमारी भोली सरकार को कभी एकांत में मिलकर, तो कभी समाचारपत्रों द्वारा भाँति भाँति की प्यारी-लुभावनी सलाहें दीं और उनके द्वारा उन सारी पुस्तकों को सरकारी शिक्षा विभाग की सीमा से बाहर धकेलवा दिया. अरे, आज के प्रगतिशील समय में अपने को उस उपदेशक का शिष्य कहलाने वाली सरकार भी जब चार-छः स्वार्थी बाम्हन-सुधारकों की गुलाबी-मीठी सलाह मानकर उस ग्रंथ को ही सारे सरकारी शिक्षा विभाग से बाहर निकाल देती है, तो पहले काल में हुए अज्ञानी अधिकारियों ने चार धर्मभ्रष्ट ढोंगी लोगों के कहने पर उस उपदेशक को ही सूली पर चढा दिया था, इसलिए हमें इसमें नया या अचरज क्यों होना चाहिए?

धोंडीबा : मगर इसमें सरकार का क्या दोष है?

जोतीराव : सरकार का यदि दोष नहीं हैं, तो फिर बता कि सरकार ने जिन सुधारक-बाम्हनों की सलाह मानकर वैसी पवित्र पुस्तक को ही बाहर निकाल फेंका, तब क्या सरकार के लिए यह उचित है कि वह उन्हीं सुधारक बाम्हनों द्वारा तैयार की गयी पुस्तकों को सरकारी शिक्षालयों में रखकर उन्हें ही शूद्रों की पाठशाला में शिक्षक नियुक्त करे? इस बारे में सोचने से यह दिखाई देता है कि जिन विरोधियों ने उस पुस्तक को सरकारी शिक्षा विभाग से हटवा दिया था, उन्होंने नयी पुस्तकें, जो उन्होंने ही तैयार की हैं, उन पुस्तकों को सरकारी शिक्षा विभाग से नहीं निकलवाया और दूसरी ओर सरकार

है कि उन्हीं लोगों को बड़े-बड़े इनाम देकर उन्हें ही सारे विद्यालयों में शिक्षक नियुक्त करती है. इस प्रकार स्वयं सरकार ही अवसर देती है कि शूद्र भी उस पवित्र पुस्तक के विरुद्ध मुँह खोलें. इसलिए मन में आता है कि यदि हमारी भोली सरकार उस पवित्र पुस्तक की तरह सारे शिक्षा विभाग में से प्रतिवादियोंको भी उनकी पुस्तकोंसहित देशनिकाला नहीं दे सकती, तो अच्छा हो कि हमारी सरकार कृपा करके सारा शिक्षा विभाग बन्द कर दे और अपने घर जाकर आराम करे. इससे हम शूद्रों पर कर का बोझ कुछ तो कम होगा ही. क्योंकि विद्याविभाग के एक प्रमुख बाम्हन-कर्मचारी की अंटी में कम से कम छः सौ सुर्ती रुपये अर्थात् हर साल (7,200) सात हज़ार दो सौ रुपये खोंसने पड़ते हैं. अब इतने रुपये शूद्रों के पास कहाँ? सुलतानी से तो कुछ मिलने से रहा, लेकिन अगर आसमानी की मेहरबानी हो जाय, तो भी इतनी रकम जमा करने के लिए शूद्रों के कितने परिवारों को साल भर रात और दिन खेत में मरना-खपना पडेगा? सोच तो सही. कम से कम एक हज़ार परिवारों को खोना पड़ेगा या नहीं? अच्छा, यह जो इतनी गाढी कमाई इन बृहस्पति जी को मिलती है, उस हिसाब से शूद्रों को उन बृहस्पति जी से कोई लाभ होता है क्या? अरे, रोज़ चार आना पाने वाले मजदूर को सूरज निकलने से लेकर दिन छिपने तक सड़क पर मिट्टी की टोकरियां ढोनी पड़ती हैं. उसे कहीं बाहर जाने के लिए घडी-दो घड़ी की फुरसत भी नहीं मिलती. और दूसरी ओर रोज़ बीस रुपये पाने वाला बाम्हन-कर्मचारी विद्यालय में हवादार जगह में कुर्सीपर बैठकर काम करता है. फिर मानों म्यूनिसिपैलिटी का बराती हो ऐसी ऐंठ में रोज़ सुबह और शाम को ठंडी ठंडी हवा में शान से घोड़ा-गाड़ी में बैठकर निकलता है, मानों सब लोगों से जान-पहचान करने या मिलने-मिलाने निकला हो. घोडा-गाडी में बैठकर शहर के रास्तों-गलियों में घूमते हुए लोगों के ओसारों और शौचालयों का निरीक्षण करते फिरने की उन्हें फुरसत कैसे मिल पाती है? अरे, इसे चाहिये तो यह था कि शहर के गली कूचों में जाकर अज्ञानी लोगों को समझाता कि विद्या पाने से क्या-क्या लाभ हैं, वह तो रहा दूर, इसे इस तरह टहलने घूमने में ही बडप्पन लगता है. तब फिर मिशन विभाग में प्रतिमास दस रुपये पाने वाला उपदेशक क्या इससे हज़ार गुना अच्छा नहीं है? क्योंकि जिस भी शहर में वह उपदेशक रहता है, उस शहर के हर छोटे-बड़े को पता होता है कि वह उपदेशक है – परन्तु इन नवाब साहबकी तो बात ही न्यारी है – अपने घर की निचली मंजिल में रहने वाला किरायेदार भी इसके लिए ऐरा-गैरा नत्थू खैरा ही होता है. अरे, यह करता क्या है? अपने ऊपरवाले

यूरोपियन अधिकारी के पास जाकर रोज इधर उधर की दो-चार गप्पें हाँकता है, जी में आया तो घंटा-दो घंटे विद्यालय में पढा देता है, और साल में दो चार रिपोर्ट ऊपर भेज देता है, बस इसका काम हो गया पूरा. और इसीको चार खुशामदी लोग ईमानदार सेवक और देशाभिमानी कहते हैं! अरे, इन ईमानदार बाम्हन-सेवकों ने आज तक शिक्षा विभाग के लाखों रुपये पेट में ढकोसे हैं, किन्तु उनसे यह न हुआ कि अतिशूद्रों को पढा-लिखाकर उनमें से कम से कम एक को तो म्यूनिसिपैलिटी का सभासद बनाते. इस बात से अब तू ही समझ देख कि शिक्षा विभाग के सारे कुल ईमानदार चाकरों के मन में अपने देश के अज्ञानी अतिशूद्रों के लिए कितना प्यार उमड़ा आता है! यही नहीं, यही देशाभिमानी जब म्यूनिसिपैलिटी में मुख्य-अधिकारी थे, तब इनसे इतना भी तो नहीं हुआ कि पिछले साल वाले पानी के अकाल में अतिशूद्रों को सरकारी हौज पर पानी भरने देने में सहायता करें. इससे यही सिद्ध होता है कि कमेटी में अतिशूद्रों का कम से कम एक सभासद तो अवश्य होना चाहिए.

धोंडीबा : आपका कहना ठीक है, परन्तु मैंने सुना है कि आजकल * **कमेटी** में जो भी शूद्र सभासद हैं, वे इतने विद्वान् हैं कि अपना मत देते समय "हे गोविंद, हे गोविंदा", कहने वाले मंत्र * के समान केवल सिर हिलाकर "हाँ" या "ना" कहते हैं. मानों बड़ी कृपा करते हैं. क्योंकि जिसे हस्ताक्षर करने के भी लाले पड़े हैं, उनके बारे में बाकी के नाम पर तो पूरा गोल-गोल शून्य ही होगा. अच्छा, यह तो कहिये, कमेटी में कुर्सी पर बैठकर शूद्रों की तरह ही सिर हिलाने वाले और हस्ताक्षर करना जानने वाले कुछ थोड़े लोग अतिशूदों में भी मिलेंगे क्या?

जोतीराव : ऐसे शूद्र सभासदों की अपेक्षा हजार गुना अधिक लिखना-पढना जानने वाले अतिशूद्र बहुत से मिल जायेंगे. लेकिन बेचारे करें क्या? बाम्हनों के स्वारस्थ से भरी पोथियों के अनुसार तो सब अतिशूद्रों को छूना भी मना है, इसलिए बेचारोंको शूद्र सभासदों के जैसे लोगों के बीच मिल-जुलकर धन-धाम कमाने का अवसर ही नहीं मिलता. इसलिए उन्हें आज भी गधे हाँककर ही अपने पेट भरना पडता हैं.

धोंडीबा : सब जातियों की संख्या का अलग-अलग अनुपात यदि देखा जाय, तो कमेटी में कौनसी जाति के सभासदों की संख्या अधिक दिखाई देती है?

---

* कमेटी – पुणे की नगरपालिका.
* नंदी बैल – नादिया बैल.

जोतीराव : बाम्हन जाति की ही भरमार है.

धोंडीबा : यही कारण है कि कमेटी में मजदूरों और भंगियों को छोड दें, तो बाकी सारी बाम्हन कर्मचारियोंकी ही अधिकता है. पहले नल विभाग में भी बाम्हन-कर्मचारी ही थे. वे तेज़ गर्मियों में भी अपनी जात के सारे बाम्हनों की हवेलियों के हौज में मनचाहे ढंग से इतना पानी छोड़ते थे कि आस-पास के बाम्हन-पडौसियों के लिए भी धोती-बरतन धोने-माँजने की धूम रहती थी-इतनी कि पानी बेकार बहता रहता था. किन्तु जिस मुहल्ले में गरीब शूद्रों की बस्ती है, उन मुहल्लों के हौदों में दोपहर बाद राहगीर की प्यास बुझाने को भी पानी नहीं रहता. फिर धोने-धाने की धूम-धाम कहाँ! इसके अतिरिक्त एक और बाम्हनों की बस्ती में कितने ही नये हौद बन गये हैं और जुनागंज पेठ आदि मुहल्लों के लोगों का आज कितने बरसों से "हौद-हौद" पुकारते-पुकारते गला सूख गया है, लेकिन कमेटी में बाम्हन-सभासदों की बहुसंख्या होने के कारण उस बस्ती के गरीबों की कई बरसों तक कोई सुनवाई ही नहीं हुई. अन्त में जब अर्थात् पिछले साल पानी की एकदम कमी हो गयी, तो मिठगंज के मांग-महार जाति के लोगोंने काले हौद को छूकर पानी भरना शुरू कर दिया. तब जाकर कमेटी को होश आया और उसने उन लोगोंकी फ़रियाद सुनी. इस कमेटी ने पानी के प्रबन्ध के इस काम में इतना बेहिसाब अँधाधुंध ख़र्चा किया है कि वैसा आचरण कमेटी के मुख्य सभाध्यक्ष की समझदारी और शान के लिए उचित नहीं है. ख़ैर, कमेटी में जब इतनी अंधाधुंधी चल रही है, तो मराठी समाचारपत्रों के संपादक सरकार को इस बारे में सचेत क्यों नहीं करते?

जोतीराव : अरे, सारे मराठी समाचारपत्रों के संपादक ठहरे बाम्हन अपनी जात के लोगों के विरुद्ध लिखने को उनकी कलम चलती ही नहीं. जब यूरोपियन सभानायक था, तब तक इन सारे बाम्हनों की कोई चतुराई चलने नहीं देता था. तब तो वे सारे इकट्ठे होकर चिल्लाने लगे "उस यूरोपियन ने ऐसा करके हम सारी प्रजा का यों नुकसान किया, उसने वैसा करके हम सारों का क्यों नुकसान किया" इस प्रकार वे लोग उस यूरोपियन सभानायक के बारे में नाना प्रकार की सिर पैर की अफ़वाहें फैलाने लगे और उसे इस तरह इतना सताया कि वह अपने पद का त्यागपत्र देकर ऐसा गया कि दुबारा कमेटी का नाम भी नहीं लिया. अच्छा, और एक बात यह कि अपनी दयालु सरकार भी उन सारे स्वार्थी समाचारपत्रों का कहना सच मानकर यह मान लेती है कि उनके लेखों में प्रकट किया गया मत ही सारे शूद्रों-अतिशूद्रों का मत

भी है. यह समझना हमारी भोली सरकार की भारी भूल है. उन्हें तो इतना भी नहीं मालूम कि कुल सारे बाम्हन संपादकोंकी और शूद्रों-अतिशूद्रों की तो जीवन यात्रा में एक बार भेट भी नहीं होती. उस पर और भी यह कि अधिकांश अतिशूद्रों को अख़बार नाम की चीज़ का ही पता नहीं होता. अख़बार क्या होता है—वह गीदड़ है या किसी कुत्ते का नाम है या कोई बंदर—चिड़िया है, वे क्या जानें ! तब भला छूतछात के पुजारी वे अख़बार वाले ऐसे अनपढ अजनबी अतिशूद्रों के विचारों का कैसे और कहाँ से पता लगा पाते हैं ? उन लोगों ने सरकार का ठठ्ठा-मखौल उड़ाकर अज्ञानी जनों के मन को बहका-फुसलाकर अपना पेट ठसाठस भरने का यह एक चालाकी भरा ढकोसला खोज निकाला है. यदि कहो कि ऐसी बात नहीं है, तो फिर जब कि कुल सारे विभागों में उनकी अपनी ही जात के कर्मचारी भरे पड़े हैं और इस कारण अतिशूद्रोंसहित सारे शूद्रजनों की कितनी हानि हो रही है, इस बारे में कुछ खोज-बीन करने की उन्हें फ़ुरसत नहीं मिलती क्या ? यदि कहा जाय कि हाँ, फ़ुरसत नहीं मिलती, तो फिर समुद्र कें परले पार बसे लंदन शहर की महारानी जी की सरकार के प्रधान-मंत्री ने हिन्दुस्तान के बारे में जागते में या सोते—सपने में जो कुछ कहा हो, उन सारी बातों की पूरी-पूरी अचूक जानकारी पाने की फुरसत इन्हें कहाँ से मिल जाती है ? ख़ैर . . . और भी एक बात यह कि अगर कोई मराठी, ईसाई संपादक अपने अख़बार में लिख दे कि कमेटी में गरीबों की सुनवाई नहीं होती, तो ऐसे समाचार की और कुल सारे मराठी समाचार पत्रों में क्या-क्या छपता है, उस सबकी संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार करके सरकार को भेजने का काम भी कमेटी के एक बाम्हन-सदस्य को ही सौंपा गया है, तब ऐसा वह रिपोर्टर अपने पास पाँव से पाँव सटाकर बैठनेवाले अपने जात-भाई के संकोच या लिहाज़ की कोई परवाह किये विना उसके विरुध्द लिखी गयी किसी ख़बर या लेखन को सरकार के सामने रखने की हिम्मत कर सकेगा क्या ?

धोंडीबा : यदि चारों ओर इस तरह बाम्हन-सभासदों की ही बहुतायत है और इस कारण शेष सारी जातियों की हानि हो रही है, तो आप ही इस बारे में एक छोटीसी पुस्तक लिखकर दक्षणा-प्राईज् कमेटी * को अर्पण क्यों नहीं कर देते? कम से कम उससे तो सरकार की आँखें खुल जायेंगी.

जोतीराव : मैंने सन् 1855 में एक छोटा सा नाटक लिखकर दक्षणा प्राईज कमेटी को अर्पित किया था. इस नाटक में बतलाया गया था कि पंडित-पुरोहित

---

* दक्षणा प्राईज कमेटी=सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति.

(भट-जोशी) अपने स्वार्थी धर्म की गप्पें हाँककर अज्ञानी शूद्रों को कैसे-कैसे फँसाकर लूटते हैं और साथ ही यह भी बतलाया था कि ईसाई धर्मोपदेशक अपने पक्षपातरहित धर्म के आधार पर अज्ञानी शूद्रोंको सत्य उपदेश करके उन्हें सत्य मार्ग पर किस प्रकार लाते हैं. परन्तु वहाँ भी एक हठी बाम्हन-सभासद के आग्रह के कारण यूरोपियन सभासदों की कुछ नहीं चली और उस कमेटी ने मेरी नाटिका अस्वीकृत कर दी. अरे, यह जो दक्षणा प्राईज कमेटी है, उसे भी म्यूनिसिपैलिटी की छोटी बहन कहने में कोई हर्ज़ नहीं है, क्योंकि उस कमेटी ने शूद्रों के उत्थान के लिए कहाँ कहाँ क्या किया है शूद्रों में कौनसी जोत जगायी है, यह तो दिखला. अन्त में मैंने उस पुस्तक को एक ओर रख दिया और कुछ साल बीतने के बाद बाम्हनों की चतुराई के बारे में एक दूसरी छोटीसी पुस्तक लिखी और उसे अपने ख़र्चे से छपवाकर प्रकाशित किया. तब पुणे के मेरे एक मित्र ने मुझसे बहुत आग्रह किया और उसने मेरे द्वारा शिक्षा विभाग के सब मुख्य अधिकारियों के नाम सूचना पत्र भिजवाया कि वे मेरी पुस्तकें ख़रीदें. परन्तु उनमें से एक भी अधिकारी ने बाम्हनों के भय से एक भी पुस्तक नहीं ख़रीदी. ठीक ही तो है – ख़रीदने पर उनके नाम पर बट्टा ना लग जाता!

धोंडीबा : तात्यासाहब, आपको सबकी लल्लो-चप्पो करनी नहीं आती-इसलिए आपकी पुस्तकें खपती नहीं.

जोतीराव : अरे भाई, अच्छा काम पूरा करने के लिए बुरे उपाय से काम नहीं लेना चाहिये, अन्यथा उस काम की अच्छाई में कलंक लग जाता है. उन्होने मेरी एक पुस्तक नहीं ख़रीदी, तो भगवान्‌ने मुझे कुछ कम पड़ने दिया है क्या? नहीं. आगे चलकर तो मैं यह भी सीख गया कि वैसे लोगों की बिनती-चिरौरी करने की अपेक्षा उन्हें धिक्कारना ही अच्छा है. और मैं यह भी जान गया कि अपने उत्पत्तिकर्ता उस जगत्पिता पर ही सारा भार सौंपना चाहिये. इसलिए मैं उस ईश्वर का त्रिवार आभार मानता हूँ.

धोंडीबा : आपने बाद में ब्राह्मण आदि जाति की कन्याओं के लिए पाठशालाएँ स्थापित कीं, तब सरकार ने मेहरबानी करके आपका बहुत बड़ा सत्कार किया था और आपको एक शाल का जोड़ा भेंट दिया था. उसके बाद आपने अतिशूद्रों के लिए अलग से दूसरी पाठशाला स्थापित की. आपने उसमें कई ब्राह्मणों को भी सहायक बनाया. उन सब पाठशालाओं में आपने विद्यादान का तीव्र प्रवाह सा बहाया, किन्तु फिर आपने वह काम अचानक ही एक ओर कर दिया और आप दूर जा खड़े हुए. आगे चलकर कुछ वर्षों बाद आपने सारे

यूरोपियन लोगों के घर आना-जाना भी बन्द कर दिया. इसके कारण क्या हैं?

जोतीराव : ब्राह्मण आदि जातियों की कन्याओं के लिए स्कूल खोलने से सरकार को आनन्द हुआ और उसने मुझे एक शाल-जोडा पुरस्कार स्वरुप दिया था, यह बात अवश्य सच है, किन्तु बाद में जब मुझे अनुभव हुआ कि अतिशूद्रों के लड़के-लड़कियों के लिए पाठशाला की अत्यन्त आवश्यकता है, तो मैंने उस सब जातियोंवाले विद्यादान के काम में अनेक ब्राह्मण सभासद बनाये और वे सब शालाएँ उनके आधीन कर दीं और मैंने स्वयं अतिशूद्रों के बालक-बालिकाओं के लिए पाठशालाएँ खोलीं, तब कुल सारे यूरोपियन सज्जनों ने मुझे धनादि के द्वारा बहुत सहायता दी. उन उदार महाशयों में से रेवेन्यू कमिशनर रीब्ज साहब ने जो सहायता की, उसे मैं कदापि न भुला सकूँगा. इन उदार महाशय ने केवल धन के द्वारा ही सहायता दी हो, सो नहीं, बल्कि अपने महत्वपूर्ण काम व्यवसाय की ओर ध्यान देने के साथ-साथ वे समय समय पर अतिशूद्रों के स्कूलों में आते रहते थे और बार-बार पूछताछ किया करते थे कि पढाई में विद्यार्थियों की प्रगति कैसी, कितनी हुई है. इसी प्रकार बालकों में विद्या पाने की इच्छा बढती रहे, इसके लिए वे बहुत प्रयत्नशील रहते थे. उनके उपकार तो अतिशूद्रों के बालकों की नस-नस में समाये हुए हैं. इतने उपकार हैं उनके कि यदि वे अतिशूद्र अपनी चमड़ी के जूते बनाकर उन्हें पहनायें, तो भी उन उपकारोंका बोझा सिर से न उतर पायेगा. इसी प्रकार अन्य भी कई यूरोपियन सज्जनों ने मुझे इस कार्य में सहायता दी है, इसलिए मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ. मुझे इस कार्य में भी ब्राह्मण-सभासद बनाने की आवश्यकता आ पड़ी. इसके आन्तरिक कारण क्या थे, यह मैं फिर किसी अवसर पर बताऊँगा, परन्तु आगे चलकर जब मैं उन पाठशालाओं में बाम्हनों के पूर्वजों की ढोंगी पुस्तकों की धूर्तताएँ प्रकट कर करके बालकों को समझाने-दिखाने लगा, तब बातचीत में और व्यवहार में मेरा और बाम्हनों का मनमुटाव भीतर ही भीतर बढने लगा. उनकी बातों में सुझाव यह था कि इस अतिशूद्रों के बालकों को विद्या बिलकुल ही न दी जाय. यदि विवशतावश उन्हें पढाना पड़े, तो उन्हें केवल सामान्य अक्षरज्ञान करा दिया जाय ताकि वे अपना हित-अनहित समझ सकें. अतिशूद्रों को विद्या न देने के पीछे उनका हेतु क्या रहा होगा, यह तो कहना कठिन है, परन्तु संभव है कि उन्होंने सोचा हो "यदि वे लोग विद्यावान् हो जायेंगे, तो जिस सरकार के द्वारा उन्हें शिक्षा प्राप्त हुई है और उस प्राप्त विद्या ज्ञान से वे खरे-खोटे की पहचान करने लगे हैं, वे उस सरकार के परम निष्ठावान् सेवक बन जायेंगे तथा

हमारे पूर्वजों द्वारा किये गये अत्याचारों की स्मृति उनके मन में जाग उठेगी और तब वे हमारा धिक्कार करने लगेंगे अथवा जाने क्या करेंगे" संभवतः यही आशंका कारणीभूत रही होगी. इस प्रकार जब मेरे तथा उनके विचारों में मतभेद होने लगा, तो मैं उनके सारे कार्य को बनावटी समझकर दोनों विभागों से दूर हो गया. इसके बाद कुछ वर्ष बीते थे कि तभी बाम्हन-पांडे (भटपांडे) का विद्रोह भड़क उठा. तब से सारे यूरोपियन सज्जन मुझसे पहले की भाँति मुक्त मन से बात नहीं करने लगे और मुझे देखते ही उनके माथे पर बल पड़ने लगे. तब मैंने उनके घर आना-जाना बिलकुल बंद कर दिया.

धोंडीबा : भट-पांडों के उपद्रव के कारण आप जैसे निरपराध व्यक्ति की उपेक्षा करके आपको देखते ही उनके माथे पर बल पडने लगें, यह तो उनकी समझदारी के लिए उचित नहीं है. आपने तो उलटे इतना कल्याणकारी कार्य आरंभ किया है कि ब्राह्मण विधवा स्त्रियाँ गर्भपातादि घृणित कार्य ना करें, इस हेतु आपने अपने घर ही में गुप्त रीतिसे उनकी प्रसूति का प्रबंध किया हुआ है. और इस सेवाकार्य में आपने अपनी सरकार से भी किसी प्रकार की मदद नहीं माँगी. इसी प्रकार आपने इस सामाजिक कार्य में कोई ब्राह्मण सदस्य नाम को भी नहीं लिया है – और इसका पूरा व्यय आप स्वयं करते हैं. यह सब मुझे भली भाँति ज्ञात है.

जोतीराव : अपनी सरकार की तो "जहाँ मिले पैसे चार, उसीकी जै-जै कार" वाली बात है. क्योंकि अतिशूद्रों के लिए तो कुछ छूने की भी मनाही है, स्वभावतः उनके लिए काम-धंधे के सारे दरवाज़े बंद हो गये हैं. परिणाम यह कि पेट की आग बुझाने को उन्हें चोरी-लूटमार करना पड़ती है. हमारी सरकार ने थाने में उनकी हाजिरी लगाने का नियम बना दिया, सो तो ठीक किया. परन्तु दूसरी ओर बाम्हनों में निराश्रित अनाथ विधवा नारियों का पुनर्विवाह निषिद्ध होने के कारण वे व्याभिचार करके गर्भपात या बालहत्या करती हैं. हमारी न्यायी सरकार यह सब खुली आँखों देखती है, फिर भी उन पर निरीक्षण या जाँच-पड़ताल करने के लिए मांग या रामोशी * की नियुक्ति नहीं करती. यह तो बड़े आश्चर्य की बात है. क्या हमारी सरकार सोचती है कि, गर्भपात और बालहत्या जैसे अपराध करने वाली स्त्रियों की अपेक्षा लूटमार करने वाले मांग-महार अधिक दोषी हैं? दूसरे यह कि इन बाम्हनों की 'खाना कम, चभड-चभड ज्यादा' वाली बात है. अरे, जिनसे इतना भी न बना कि एक होकर अपनी ही विधवाओं, बालविधवाओं के

---

* मांग – एक अछूत समझी जाने वाली जाति। रक्षक व प्रहरी जाति।

रामोशी – गाँव का प्रहरी। पुराने काल में इस जाति के जिम्मे जासूसी का काम भी था।

बाल मूँडने वाले नाई के हाथ का उस्तरा छीन सकें, तब ऐसे लोगों को साहसभरे ऐसे काम में सभासद बनाने से क्या फल निकलने वाला है?

धोंडीबा : अच्छा, वह तो ठीक है. किन्तु आपने पहले जो कहा था कि कुल सारे शिक्षा विभाग में बहुत-सी अव्यवस्था है. यह क्या है? कहिये तो.

जोतीराव : उन सबका वर्णन करने में तो एक छोटी-सी पुस्तकही तैयार हो जायेगी. इस कारण उनमें उदाहरण के रूप में केवल एक-दो बातें कहता हूँ. पहली है शूद्रों-अतिशूद्रों के बच्चों की पाठशालाओं के लिए शिक्षक तैयार करने की अव्यवस्था.

धोंडीबा : ऐसा कैसे कहते हैं आप? सरकार ने तो सब जातियोंके बच्चों को सिखाने-पढाने के लिए गुरूजी तैयार करने वाला एक अलग विद्यालय खोला है. सरकार के मन में कोई अपना-पराया नहीं.

जोतीराव : तो फिर यह दिखला कि उस विद्यालय से निकले गुरूजी लोगोंने अतिशूद्रों के कितने बच्चों को पढा-लिखाकर तैयार किया है.? बता ना अब सिर झुकाकर नीचे क्यों देख रहा है? बात का उत्तर दे.

धोंडीबा : सारे बाम्हन-गुरुजी का कहना है कि अगर अतिशूद्रों के लड़के पाठशाला में लिये जायेंगे, तो हिन्दुस्तान में बड़ा हो-हल्ला और ऊधम मच जायेगा. इस कारण सरकार डरती है.

जोतीराव : अच्छा, लेकिन सरकार पलटन में सब जातियों के लोगों को भरती करती है – इस पर हिन्दुस्तान के लोग ऊधम क्यों नहीं मचाते? यह सब सरकार की टालमटोल है – क्योंकि पलटन में भरती का काम तो स्वयं सरकार करती है और गुरूजी तैयार करने का काम किसी ऐरे-गैरे नत्थू खैरे को सौंपती है. उसे इस काम की कोई जानकारी तो होती नहीं. यदि उसे इस काम का कुछ भी ज्ञान होता, तो वह गुरूजी तैयार करनेवाले विद्यालय में पहले अतिशूद्रोंके लड़कों को प्रवेश देता और जैसा कि अब हुआ है, इस तरह उस विद्यालय में केवल बाम्हनों के लडकों की बेकार की भरती ना करता.

धोंडीबा : तो फिर सरकार इसका क्या उपाय करे?

जोतीराव : इसका उपाय बस एक ही है – वह यह कि सरकार दया करके यह सारा काम यूरोपियन कलैक्टरों को सौंप दे. बिना इसके कार्य पूरा नहीं होगा. क्योंकि इन लोगों का शूद्र-अतिशूद्रों से निकट का सम्बन्ध है. वे बाम्हन-कर्मचारी का भरोसा न करके जब हर गाँव में एक-एक बार जायेंगे,

वहाँ जाकर वे केवल बाम्हन कुलकर्णी को ही बुलाकर नहीं पूछेंगे, बल्कि गाँव के सारे बच्चे-बूढ़ों को समझायेंगे कि विद्या पाने से क्या-क्या लाभ होते हैं. तब ऐसा जानते ही वे लोग अपने बुद्धिमान् बालकोंको चुनेंगे और गुरूजी बनाने के लिए खुशी-खुशी उन्हें कलैक्टरसाहब के हवाले करेंगे. कारण यह है कि यह कार्य जैसे यूरोपियन कलैक्टर के द्वारा पूरा होगा, वैसा गाँव के अनुभवहीन कर्मचारी के द्वारा पूरा नहीं होगा. न ही आज तक हुआ है, और आगे भी पूरा होगा या नहीं, इसमें सन्देह ही है. इस बारे में एक कहावत है – 'जेनो काम तेना थाय, बिना करे तो गोता खाये' (जाको काम वाहिको साजै, दूजो करै तो गोतो खावै) इस से तू ही समझ ले कि अतिशूद्र जाति के अध्यापक तैयार करने की कितनी आवश्यकता है. क्योंकि जब उस जाति के अध्यापक तैयार हो जायेंगे, तो वे अपनी जाति का अभिमान मन में धरकर अपनी जाति के बालकों की उन्नति का ध्यान रखेंगे. इससे पहले कि वे बच्चे हाथ में लकुटिया लेकर ढोर-डंगर चराते फिरें, वे शिक्षक उन बच्चों के मन में पढने-लिखने की रुचि उत्पन्न करेंगे. इतनी कि वे बच्चे आगे बड़ा होने पर अपने में से एक को बारी-बारी गाँव के बाहर वाले बंजर मैदान में गाय-भैसों की हँका-हँकाई करने भेजेंगे और बाकी के सारे गाँव के सिवान में सिलोर-डंडा का खेल नहीं खेला करेंगे, बल्कि गाँव में आकर उनके अपने गुरूजी से पढना लिखना सीखना नहीं भूलेंगे. किन्तु आज के इस सुधारक युग में भी अमरीकन जो सुधार कार्य में, प्रगति में बहुत आगे हैं, उस अमेरिका के आधे लोगों को अपने ही देश के अपने देशभाईयों से निरन्तर तीन वर्षों तक जूझना पड़ा, तब कहीं जाकर नीग्रो दास उनके पंजे से निकल सके हैं, तब ऐसे ग्रामीण बाम्हन-गुरूजी के मन में शूद्रों-अतिशूद्रों को सत्य ज्ञान सिखलाने का और उन्हें अपनी गुलामी से मुक्त कराने का विचार भला कैसे आयेगा? अरे, जब निश्चित है कि एक बाम्हन-प्रोफेसर के वेतन में एक छोड़ छः शूद्र और नौ अतिशूद्र प्रोफेसर सस्ते में मिल सकते हैं, तब हमारी यह सरकार इस बारे में बाम्हनों के फेर में पड़कर अपने अज्ञानी भाईयों की कमाई के पैसे बेहिसाब फिजूलखर्च क्यों करती है? और अगर हम इस बारे में अपनी सरकार को सावधान नहीं करेंगे, तो सारा दोष हमारे माथे मढा जायेगा. अच्छा, यह बता कि चौधरी की हवेली में जो भोजनालय चलता है, उसमें अतिशूद्रों के बालक कितने हैं?

धोंडीबा : अजी, जहाँ शूद्रों के बच्चों की बात के ही लाले हैं, वहाँ अतिशूद्रों के बच्चों की बात आप काहे करते हो?

जोतीराव : क्यों भला? तूने ही तो कहा था ना कि सरकार का कोई अपना-पराया नहीं? तो फिर उस भोजनालय में ऐसा क्यों हैं? बता.

धोंडीबा : ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वहाँ सारे कर्मचारी बाम्हन हैं. आपने ही मुझे एक दिन इस बारे में प्रत्यक्ष प्रमाण दिखलाया था. वह यह था कि पहले जो एक बाम्हन-महाशय अपने पास नौकरी करता था, तब वह दिन में दो बार अतिशूद्रों के विद्यालय में जाकर सब जाति के बालकों को पढाता था-छुआछूत का कोई भेदभाव उसने तब नहीं माना था. परन्तु वही बाम्हन बाबा जव यहाँ भोजनालय में सेवक बन गया, तो इतना छुआछूत मानने लगा कि एक गरीब सुनार को एक दिन चावडी में घसीटते लाया. कारण यह था कि उसने गर्मी के मौसम में उस विद्यालय के पानी के हौज को छू लिया था और अपनी प्यास बुझा ली थी.

जोतीराव : अरे, जिस ब्राह्मण-शिरोमणि के रचे हुए गीत गाने की लीक पीटने सारे नये समाज में होड़-सी लगी है, उसने भी अपने स्वार्थपूरित धर्म का कहा पत्थर पूजना तो छोड़ा नहीं, उलटे अपने भवन में बने हुए ब्राह्मणों के कुंडको कोई शूद्र छू ना ले, इसलिए उसने एक दीवार खड़ी कर दी है और अन्त में अब काशी जाकर काशीवासी होने की तैयारी कर रहा है. और हमारी निष्पक्ष म्यूनिसिपैलिटी है कि जिसमें बाम्हन सभासद भरे पड़े हैं इसलिए म्यूनिसिपैलिटी ने वह दीवार ज्यों की त्यों रहने दी और शुक्रवार पेठ के दर्जियोंवाले हौज की दीवार झटपट गिरा दी. उस पर और विशेष बात यह कि वहाँ के कितने ही बाम्हन जी ने उस हौज की निकासी के पास ही केवल अपने उपयोग के लिए एक छोटा सा छुपा हौज बना लिया है. और उसमें से पानी ले-लेकर वे अपने छुआछूत वाले चोंचले पूरा करते हैं–नहाने-धोने में कितना ही पानी व्यर्थ बहा देते हैं. अब बाम्हन का जनम पाकर ऐसी-ऐसी चतुराई ना चलाई, तो वह जनम ही कैसा?

□ □ □

धोंडीबा : आपने ऊपर के घोषणा पत्र में जो धाराएँ लिखी हैं, वे मुझे पसंद हैं तथा मैं उसके अनुसार ही आचरण करूँगा. हज़ारों वर्षों के बाम्हनों के पाखंडी एवं कष्टमय बन्दीगृह से मैं आज मुक्त हुआ हूँ. इस कारण मुझे परम हर्ष हुआ है. इस हेतु मैं आपका ऋणी हूँ. तात्पर्य यह – आपके संपूर्ण कथनानुसार हिंदू धर्म की कृत्रिमता के विषय में तो मुझे पूरा निश्चय हो गया है, परन्तु मन में आता है कि हम जिस एक परमेश्वर को मानते हैं और सब ज्ञानीजन भी मानते हैं, उस परमेश्वर को, वह सर्वसाक्षी तथा सर्वज्ञ है, फिर भी हम शूद्रादि-अतिशूद्रों की दुर्दशा अभी तक दिखाई ही न दी होगी क्या?

जोतीराव : इस विषय में आगे कभी किसी अवसर पर तुझे सब कुछ विस्तार से कहूँगा, तब तुझे पूरा निश्चय हो जायेगा.

–० समाप्त ०–

उपर्युक्त पत्र के विषय में पत्र-संपादकों के जो अभिप्राय मिले, उनकी योग्यता जानने के हेतु वे अभिप्राय हम अपने पाठकों के सम्मुख रखते हैं,—

लोककल्याणेच्छु

पुणे – शनिवार, तारीख 4 जनवरी 1872

हमारे प्रसिद्ध महाज्ञानी, महाविचारक तथा महाशोधक तत्ववेत्ता आदरणीय जोतीराव गोविंदराव फुले महाशय ने एक महान् सज्जन का अनुरोध लेकर अप्रयोजक रीति का आत्मश्लाघा तथा ब्राह्मण-निन्दा से परिपूर्ण एक पत्र हमारे पास भेजा है. उसे हमारे समाचारपत्र में स्थान देना संभव नहीं है. इस कारण उल्लिखित आदरणीय श्रीमान फुले जी हमें क्ष मा करें.

शुभवर्तमानदर्शक एवं चर्च संबंधी नानाविध संग्रह

कोल्हापुर – ता. 1 फरवरी सन् 1873

पत्रव्यवहार

पुणे के स्थानीय समाचारपत्र कर्ता निम्नलिखित लेखन को अपने पत्रों में स्थान नहीं देते हैं – इसलिए यह लेख हमारे पास भेजा है. इस लेख को सब ओर प्रकाशित किया जाय, ऐसी मि. जोती गोविंदराव फुले की इच्छा है. इसलिए हम इसे अपने अंक में स्थान दे रहे हैं. यद्यपि हमारे हिन्दू मित्रोंको यह लेख किसी सीमा तक निन्दापरक लगेगा, तथापि इसमें जो आशय व्यक्त किया गया है, वह स्तुत्य है, ऐसा हमारा मत है. क्योंकि मि. जोती को पूर्ण विश्वास है कि जैसा जातिगत भेदभाव ब्राह्मण मानते हैं, वास्तव में वैसा कोई भेदभाव नहीं है. इस कारण मि. जोती ने धैर्य पूर्वक कहा है कि मैं चाहे जिसके साथ अन्न-व्यवहार करूँगा. ऐसे धैर्य के धनी पुरुष इस देश में बहुत-बहुत होवें.

(बाम्हन कर्मचारी इंजिनियर विभाग में कैसी धाँधली मचाते हैं, उस बारे में)

पँवाडा

पेशवाई दक्षिणा रमणा[1] पाते। इंजिनियरी में नौकरी करते।

होलकरी[2] थैले हैं भरते ।। ध्रुपद ।।

लाज न आती भीख माँगते। घर-घर मारे मारे फिरते। आलसी धर्म आड़ में छिपते। बेगारी को नीच मानते। स्वार्थी लल्लो-चप्पो करते। ब्राह्मण बड़ी चतुराई करते। लिखने में कौशल दिखलाते। कुनबी को दिन-दहाड़े लूटते हाजिरी-बही ले फैल[3] पर जाते। खूब मज़े से हाजिरी लेते। बिन फी का मजदूर देखते। उसको झट से भगा हैं देते। उसके ढेरों दोष दिखाते ।। चाल ।।

कारिंदे को डाँट-डपटकर। पगड़ी कान तलक खींचकर। बेगारों को ढोंग दिखाकर। होता खड़ा दूर पर जाकर। फिर कहता आँखें तरेरकर। दाँत भींचकर होंठ चबाकर। "दूर चला जा – काम छोड़कर।" कारिंदे को बाजू ले जाकर। कान में कहता खुसपुसाकर ।। चाल ।।

नकली नामों की हाजिरी पढते। हाजिरी का उलटा मेल बिठाते। बेगारों के कंबल पर ही, फिर महाराज पसर हैं जाते। होलकरी थैले हैं भरते ।। 1 ।।

पांडू के दिन मास में बारह। अपने हाथ रहे बाकी अठ्ठारह। आठ दिन खंडू के लेखे। साथ रहे साथियों के लेखे। बाकी जो बाईस बच रहे। जमा किये सो अपने खाते। तेरे घर के सारे लोग। हैं केवल पगार के जोग। एक चवन्नी रख दे हाथ पर। स्त्रियाँ जो हैं सो बच्ची बराबर। उनके दिन छब्बीस हुए कुल। गिनते शेष रहे कितने कुल। राणी, नान्या केवल बच्चे। दो दिन भी थे नहीं काम पर। इनका बस बोझा, पैसों पर। तेरे बैल आये थे कुछ दिन। मगर मास में केवल दस दिन। वही बात भिश्ती की है, सुन ।। चाल ।।

---

(1) रमणा – बाग=पेशवाई काल में पर्वती संस्थान के पास वाले बाग में ब्राह्मणों को दक्षिणा बाँटने का समारोह.

(2) होलकरी – हुल्लड मचानेवाले, दंगाई स्वार्थी लोग.

(3) फैल – काम की जगह. मजदूरोंकी बस्ती.

धोंडीबा : आपने ऊपर के घोषणा पत्र में जो धाराएँ लिखी हैं, वे मुझे पसंद हैं तथा मैं उसके अनुसार ही आचरण करूँगा. हज़ारों वर्षों के बाम्हनों के पाखंडी एवं कष्टमय बन्दीगृह से मैं आज मुक्त हुआ हूँ. इस कारण मुझे परम हर्ष हुआ है. इस हेतु मैं आपका ऋणी हूँ. तात्पर्य यह – आपके संपूर्ण कथनानुसार हिंदू धर्म की कृत्रिमता के विषय में तो मुझे पूरा निश्चय हो गया है, परन्तु मन में आता है कि हम जिस एक परमेश्वर को मानते हैं और सब ज्ञानीजन भी मानते हैं, उस परमेश्वर को, वह सर्वसाक्षी तथा सर्वज्ञ है, फिर भी हम शूद्रादि-अतिशूद्रों की दुर्दशा अभी तक दिखाई ही न दी होगी क्या?

जोतीराव : इस विषय में आगे कभी किसी अवसर पर तुझे सब कुछ विस्तार से कहूँगा, तब तुझे पूरा निश्चय हो जायेगा.

–० समाप्त ०–

उपर्युक्त पत्र के विषय में पत्र-संपादकों के जो अभिप्राय मिले, उनकी योग्यता जानने के हेतु वे अभिप्राय हम अपने पाठकों के सम्मुख रखते हैं,—

लोककल्याणेच्छु

पुणे – शनिवार, तारीख 4 जनवरी 1872

हमारे प्रसिद्ध महाज्ञानी, महाविचारक तथा महाशोधक तत्ववेत्ता आदरणीय जोतीराव गोविंदराव फुले महाशय ने एक महान् सज्जन का अनुरोध लेकर अप्रयोजक रीति का आत्मश्लाघा तथा ब्राह्मण-निन्दा से परिपूर्ण एक पत्र हमारे पास भेजा है. उसे हमारे समाचारपत्र में स्थान देना संभव नहीं है. इस कारण उल्लिखित आदरणीय श्रीमान फुले जी हमें क्ष मा करें.

शुभवर्तमानदर्शक एवं चर्च संबंधी नानाविध संग्रह

कोल्हापुर – ता. 1 फरवरी सन् 1873

पत्रव्यवहार

पुणे के स्थानीय समाचारपत्र कर्ता निम्नलिखित लेखन को अपने पत्रों में स्थान नहीं देते हैं – इसलिए यह लेख हमारे पास भेजा है. इस लेख को सब ओर प्रकाशित किया जाय, ऐसी मि. जोती गोविंदराव फुले की इच्छा है. इसलिए हम इसे अपने अंक में स्थान दे रहे हैं. यद्यपि हमारे हिन्दू मित्रोंको यह लेख किसी सीमा तक निन्दापरक लगेगा, तथापि इसमें जो आशय व्यक्त किया गया है, वह स्तुत्य है, ऐसा हमारा मत है. क्योंकि मि. जोती को पूर्ण विश्वास है कि जैसा जातिगत भेदभाव ब्राह्मण मानते हैं, वास्तव में वैसा कोई भेदभाव नहीं है. इस कारण मि. जोती ने धैर्य पूर्वक कहा है कि मैं चाहे जिसके साथ अन्न-व्यवहार करूँगा. ऐसे धैर्य के धनी पुरुष इस देश में बहुत-बहुत होवें.

(बाम्हन कर्मचारी इंजिनियर विभाग में कैसी धाँधली मचाते हैं, उस बारे में)

पँवाडा

पेशवाई दक्षिणा रमणा[1] पाते। इंजिनियरी में नौकरी करते।

होलकरी[2] थैले हैं भरते ।। ध्रुपद ।।

लाज न आती भीख माँगते। घर-घर मारे मारे फिरते। आलसी धर्म आड़ में छिपते। बेगारी को नीच मानते। स्वार्थी लल्लो-चप्पो करते। ब्राह्मण बड़ी चतुराई करते। लिखने में कौशल दिखलाते। कुनबी को दिन-दहाड़े लूटते हाजिरी-बही ले फैल[3] पर जाते। खूब मज़े से हाजिरी लेते। बिन फी का मजदूर देखते। उसको झट से भगा हैं देते। उसके ढेरों दोष दिखाते ।। चाल ।।

कारिंदे को डाँट-डपटकर। पगड़ी कान तलक खींचकर। बेगारों को ढोंग दिखाकर। होता खड़ा दूर पर जाकर। फिर कहता आँखें तरेरकर। दाँत भींचकर होंठ चबाकर। "दूर चला जा – काम छोड़कर।" कारिंदे को बाजू ले जाकर। कान में कहता खुसपुसाकर ।। चाल ।।

नकली नामों की हाजिरी पढते। हाजिरी का उलटा मेल बिठाते। बेगारों के कंबल पर ही, फिर महाराज पसर हैं जाते। होलकरी थैले हैं भरते ।। 1 ।।

पांडू के दिन मास में बारह। अपने हाथ रहे बाकी अठ्ठारह। आठ दिन खंडू के लेखे। साथ रहे साथियों के लेखे। बाकी जो बाईस बच रहे। जमा किये सो अपने खाते। तेरे घर के सारे लोग। हैं केवल पगार के जोग। एक चवन्नी रख दे हाथ पर। स्त्रियाँ जो हैं सो बच्ची बराबर। उनके दिन छब्बीस हुए कुल। गिनते शेष रहे कितने कुल। राणी, नान्या केवल बच्चे। दो दिन भी थे नहीं काम पर। इनका बस बोझा, पैसों पर। तेरे बैल आये थे कुछ दिन। मगर मास में केवल दस दिन। वही बात भिश्ती की है, सुन ।। चाल।।

---

(1) रमणा – बाग=पेशवाई काल में पर्वती संस्थान के पास वाले बाग में ब्राह्मणों को दक्षिणा बाँटने का समारोह.

(2) होलकरी – हुल्लड मचानेवाले, दंगाई स्वार्थी लोग.

(3) फैल – काम की जगह. मजदूरोंकी बस्ती.

हम तो हैं जाति के ब्राह्मण। हो लाचार, करत हैं वर्णन। धर्म का नाता जोड़ दिखाते। धीरे से वह मोहित करते। सरकारी की नज़र बचाकर। करो हमारा लालन-पालन ।। चाल ।।

धोती कसकर कमर फेंट में। रहते हैं हरदम सेवा में। कभी न नागा करें काम में ।। चाल ।।

आठ बजे तो समय हो गया। घोड़े पर सवार हो जाते। घर की सीधी राह पकड़ते। पुनः लौट कर जब जब आते। पराये बाग पर हमला करते। होलकरी थैले हैं भरते ।। 2 ।।

कारिंदे के प्रिय लोगों का। खोज खोजकर पता लगाते। उनकी हाजिरी हैं भर देते। घोड़ा पकड़ रखने की ख़ातिर। सईस देकर उन्हें रिझाते। भूतों को भी बस में लाते। कारिंदे को मिस्त्री कहकर। उसे फुला फुला हैं देते। फुला फुलाकर उसका पूरा। कुप्पा गोल बना हैं देते। कभी कभी दे भोजन उसको। अपना ऋणी बना हैं देते। मौके का बस लाभ उठाते। भोजन समय ब्राह्मणी कहती। ईंधन लकड़ी बडी हैं कमती। इस देहात में साग-तरकारी। महँगी बड़ी बहुत है कमती। नींबू पाना अचार के लिए। एक बड़ी मुश्किल है, सुनिये ।। चाल ।।

मजदूरों को खाना देते। दूर दूर से फेंक फेंककर। रहते पावन वस्त्र पहनकर। वश में करते मधुर बोलकर। भोजन का लालच दिखलाकर। भोंदू को बहका-फुसलाकर। लेते घर-आँगन लिपवाकर ।। चाल ।।

फूँक जला दूँ ऐसे न्याय को। छोड़ो ऐसे नीच कर्म को। आग लगे ऐसे धर्म को ।। चाल ।।

आयी बला आपने सिर तो। मिस्त्री को आगे कर देते। आप दूर जा ठाड़े होते। मिस्त्री के गल फंद डालकर। उसका गला घोंटते रहते। होलकरी थैले हैं भरते ।। 3 ।।

अपनी घास की ख़ातिर हर दिन घोड़े बिगारी भरती करते। बारी से अपने घोड़ों को खूब खरारा हैं लगवाते। फैल में जो हों शूद्र औरतें, उनसे बरतन हैं मँजवाते। बेगारी मजदूरों से फिर अपना बिस्तर हैं लगवाते। पागल से कुनबी को पाकर। उससे अपने पैर दबवाते। खूब मजे खुर्राटे भरते। अपनी जात बाम्हन भाई को। फैल काम पर हैं ले जाते। भिक्षा उन्हें डटकर दिलवाते। संपत्ति का हिस्सा जब करते। अपने यार के भाग जगाते। कुछ का कुछ समझा हैं देते। दफतर के बाबू को किश्तें समय-समय पर देते रहते। चपरासी को पान-तंबाकू का न्यौता भी हैं दे आते ।। चाल ।।

गोरे अधिकारी जब हैं आते। तंबू में दफतर लगवाते। शिकार करके जब थक जाते। योंही कुछ दस्तखत कर देते। शेष काम बाम्हन को सौंपते। खुद पीकर मस्ती में सोते ।। चाल ।।

बैठ कोच पर बडी शान से। पढते हैं अखबार रौब से। धीरे से जब ऊँघ आ जाती। गरदन एक ओर झुक जाती। बेगारों के मुर्गी-मुर्गों से अपनी टोकरी हैं भर लेते। पैसा बीच बीच में खाते। बटलर से फिर गाँठ दोस्ती। गोरे को जुलाब करवाते। होलकरी थैले हैं भरते ।। 4 ।।

नुकसानी का पैसा सारा मिट्टी-खर्चे में लिख देते। रमणा में जी भर धन मिलता याद उसी की यहाँ भी करते। रिपोर्ट में कुछ उलटा-सीधा लिखकर मेल बिठा हैं देते। तिकडम कर पैसा खा जाते। शेष बचा धन कोष में भरते। कृषक का लोहू चूस चूसकर मोटे ताजे हैं बन जाते। कर्मनिष्ठ सेवक हैं दिखते। पर लखपति धनपति बन जाते। जितना ये घी-शक्कर उड़ाते. है सारा किसान के बूते। अँगरेजी साहब जब इनकी करतूतों का पता हैं पाते। त्यागपत्र दे ये भाग निकलते। तीन मंजिली हवेली बनवाते। आप हमारे साहब राजा हैं। न्यायशील हैं आप कहाते । फिर दीनों शूद्रों पर साहब, आप क्यों नहीं दया दिखाते ।। चाल ।।

आँखों देखी कहता हूँ यह। पूरी सत्य बात हैं जी यह। सारी जातियों को समझ बराबर। सबको समअधिकार दिलाकर। देना चाहिये सबको काम। तभी मिलेगा चैन-आराम ।। चाल ।।

चूक बता हूँ रहा आपको। दोगे नौकरी एक जात को। क्योंकर मिले प्रवेश शूद्र को ।। चाल ।।

एक जात के सब जन मिलकर। देश को बंधक बना हैं लेते। बाकी सारे खड़े-खड़े बस मुँह उनका हैं ताका करते। जोती कहता एक जात के। लोगों को भरती क्यों करते। होलकरी थैले हैं भरते ।। 5 ।।

मारवाडी तथा बाम्हन-पुरोहितों की चतुराई के बारे में :—

।। अभंग ।।

तन ढँकने को सिर्फ लंगोटी। घूमत हैं धर हल की मूठी ।। 1।।

ओढन-बिछावन कंबल केवल। नहीं स्त्रियों का दूसरा संबल ।। 2 ।।

बच्चे फिरते जंगल जंगल। ढोर चराते आज और कल ।। 3 ।।

कनकी– छाँछ से पेट हैं भरते। ऐसी गिरस्ती धन्य समझते ।। 4 ।।

सर्दी में कपड़े नहीं होते। एक दूजे से लिपट हैं सोते ॥ 5 ॥
सरकारी कर भरने जाना। तीन चोटी से पड़े सामना ॥ 6 ॥
ऋण का रूक्का लिखना पड़ता। निर्दय मारवाडी गला काटता ॥ 8 ॥
वकील बोले जब पैसा पावे। न्यायाधीश को दया न आवे ॥ 9 ॥
जहाँ पाप ना पुण्य न कोई। पैसे के सब दादा-भाई ॥ 10 ॥
एक स्थान पर जमघट जमता। शूद्र की वहाँ कौन है सुनता ॥ 11 ॥
राजा धर्मशील कहलाता। अब क्यों है वह पीछे हटता ॥ 12 ॥
विद्या दे दो लगान जितनी। कर धिक्कार जोती कहे बानी ॥ 13 ॥

बाम्हनों के स्वार्थी ग्रंथों की चतुराई के बारे में :—

॥ अभंग ॥

(यह) लेप की गरमी में अँगडाई ले सोवे। नींद कहाँ से आवे। आलसी को ॥ 1 ॥

(वह) ओस से भीगी खेत की मेंड पर। बैलों को चराता वह। शुक्रोदय में ॥ 2 ॥

(यह) गर्म पानी से स्नान करके मुटका तन पर लपेटता। पीढे बैठ संध्या करता। मौन में सुखी ॥ 3 ॥

(वह) ठीक-ठाक करता हुआ गाड़ी को हल को। जोड़ता टूटी रस्सी को। बटता बैठा वह ॥ 4 ॥

(यह) पाँवों में चमकीला जूता। लाँगदार काछी धोती। सिर पर भारी पगड़ी वाला। ढेरों कपड़े तन पर ॥ 5 ॥

(वह) लँगोटी बहादुर वह उधरे नंगे बदन का। चिंदी की पगड़ी वाला। कंबल मोटा झोटा ॥ 6 ॥

अन्न शुद्धि हित वह मिलाता घी चावल में। करता नाना विधियाँ। चित्राहुति भी ॥ 7॥

ज्वारी की कनकी छाछ मिला पेट भरे। चैन सुख कैसे मिले। खेतिहर को ॥ 8 ॥

तकिये से लगाये टेका काम बस लिखनेका। बोली में गर्व भरा। मानों भैंसा मोटा ॥ 9 ॥

नंगे पैरों है चलता हल की मूठ हाथ में ले। हाँकता बैलों को है। गीत गाते ॥ 10 ॥

थाल और पीकदान, चमचमाता दीपक है। द्विज निद्रा में खोया है। बिछौने में ॥ 11 ॥

सूखी तंबाकू में चूना मिला कर खाता। गहरी नींद सोता। मोटे कंबल पर ॥ 12 ॥

अवयवों और बुद्धि में जब दोनों समान हैं। ब्राह्मण क्यों हुआ है। सुखी इतना ॥ 13 ॥

सत्ता के घमंड में लगायी पाबंदी विद्या पर। शूद्र चला किये आज्ञापर सदा सर्वदा ॥ 14 ॥

वह मनु जल खाक हुआ अंगरेजी राज आया अब। ज्ञान का दाता वह। जननी सम ॥ 15 ॥

अब तो ऐ शूद्रो, पीछे पग ना हटाओ। दूर कहीं फेंक आओ। मनु के मत को ॥ 16 ॥

विद्या को पाते ही पाओगे सुख को। लिख लो मेरी बात को। जोती कहे ॥ 17 ॥

पुरोहित की चतुराई और शूद्रों की भोली श्रद्धालु वृत्ति के बारे में :—

॥ अभंग ॥

दुखी पडौसी के संग रोता। आँसू हैं नहीं, नकली बहाता ॥ 1 ॥

पैसा लेकर रोता-धोता। बहुरूपी यह स्वाँग रचाता ॥ 2 ॥

सर्वसाक्षी है जब वह जगपति। तब क्यों हो मध्यस्थ की स्थिति ॥ 3 ॥

छूत का पुतला भजन छोडकर। पूजा करता पैसे लेकर ॥ 4 ॥

मूरख को बहका-फुसलाता। पापी जप का नाटक करता ॥ 5 ॥

वकील की वहाँ ज़रुरत है क्या ? सर्वन्यायी जब ईश हमारा ॥ 6 ॥

त्राता वह सबका स्वामी है। उसे पराया कोई नहीं है ॥ 7 ॥

चतुर पुरोहित शूद्र को ठगता। बहका अपना पेट है भरता ॥ 8 ॥

सुन लो जोतीबा का कहना। केवल ईश भरोसे रहना ॥ 9 ॥

महात्मा फुले समस्त साहित्य—1

गुलामी

मूल लेखक — **महात्मा जोतीराव फुले**

हिन्दी अनुवाद — **प्रा. वेदकुमार वेदालंकार**

□ " आज सैंकड़ों वर्ष हुए, ब्राम्हणों का राज्य होने के बाद से समाज के शूद्र-अतिशूद्रजन निरन्तर दुःख उठाते आ रहे हैं. अनेक प्रकार की यातनाओं एवं विपदाओं के बीच दिन बिता रहे हैं. ग्रंथ-रचना का उद्देश्य यही है कि इस स्थिति की ओर सबका ध्यान जावे, सब इस विषय में सोचें-बिचारें और ऐसे उपाय करें कि जिनसे उन्हें आज के बाद से भविष्य में ब्राम्हण-पंडितों के अन्याय-अत्याचार से मुक्ति मिले. "**—महात्मा जोतीराव फुले**

□ " सर्व साक्षी है जब वह जगपति । तब क्यों हो मध्यस्थ की स्थिती ।
वकील की वहाँ ज़रूरत है क्या । सर्व न्यायी जब ईश हमारा । "

—महात्मा जोतीराव फुले

□ महात्मा जोतीराव फुले की प्रमुख मराठी रचना " गुलामगिरी " का यह हिंदी अनुवाद प्रा. वेदकुमार वेदालंकार ने किया है. जोतीराव के कृतियों में बुद्ध, कबीरदास और डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर के समान ही सामाजिक विषमता, अन्याय, जात-पात, ऊँच-नीच आदि के प्रति तीव्र विरोध दिखाई देता है, शूद्रों-अतिशूद्रों के उत्कर्ष के प्रति जैसी सच्ची लगन दिखाई देती है, स्थापित परंपराओं, कुरीतियों के विरुद्ध जो विद्रोह दिखलाई देता है, उस समस्त विद्रोह-भाव एवं रोष को हिन्दी में उसी तीव्रता एवं प्रभाव के साथ ला पाना सचमुच एक अति कठिन कार्य था. यह अति कठिन कार्य प्रा. वेदालंकार के हाथों सफलतापूर्वक सम्पन्न हो पाया है. आशा है कि महात्मा फुले के साहित्य का यह हिन्दी अनुवाद सामाजिक अन्याय-अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करने वाले कर्मवीरों के लिए तो प्रेरणादायी होगा ही, इतिहास, समाज-शास्त्र एवं शोध-कार्य के अध्येताओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा ।

महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति
महाराष्ट्र सरकार.